

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

जीवन का सार अहिंसा

जब आप इधर-उधर से लहरों के थपड़े खाते हैं और आपको अपनी सूझ-बूझ का ही सहारा रह जाता है, तो एक कठिन समस्या सामने आती है। यदि आप अपने को अध्ययन में लगायें, यदि आप अपने को अध्ययन के लिए, अनन्त शोध के लिए समर्पित कर दें, तो उस अध्ययन से मिलने वाले उल्लास और आनन्द की कोई सीमा नहीं होगी। सत्य की खोज बराबर मेरे अध्ययन का विषय रहा है। अध्ययन और खोज के अपने प्रारंभिक दिनों में मैंने देखा कि मैं सत्य को तब तक नहीं खोज सकता जब तक कि दूसरों पर नहीं बल्कि खुद अपने पर चोट को न्योता न दूँ। मैं सत्य को केवल तभी खोज सकता था जब दूसरों को चोट पहुँचाने की सारी भावना को त्याग देता बल्कि आवश्यक होने पर, अपने को चोट पहुँचाता। क्यों कि जैसा कि आप जरूर जानते होंगे, सत्य और हिंसा एक-दूसरे के विरोधी हैं। हिंसा सत्य को छिपाती है, और यदि आप सत्य को हिंसा से पाने की कोशिश करते हैं तो आप सत्य की खोज में अपने भयानक अज्ञान का परिचय देते हैं। इसलिए सत्य की खोज के लिए बिना किसी भी तरह के अपवाद के अहिंसा ही एकमात्र साधन है। जीवन का सार जो मैंने पाया है वह अहिंसा है।

(लंदन, 15 अक्टूबर, 1931)

—महात्मा गांधी

सर्वोदय जगत

अहिंसक क्रान्तिका पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष : 37, अंक : 14

1-15 मार्च, 2014

सर्व सेवा संघ

द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्तिका पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक

बिमल कुमार

मो. 9235772595

प्रसार व्यवस्थापक

उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये

शुल्क

वार्षिक : 100 रुपये

आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल: sarvodayajagat@gmail.com

sarvodayavns@yahoo.co.in

Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये

आधा पृष्ठ : 1000 रुपये

चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविताएं...	2
2. लोकसत्ता एवं लोक स्वराज्य...	3
3. क्या राजनीति आन्दोलन...	4
4. पौष्टिकता की अनूठी...	8
5. तालाब बांधता धरम...	9
6. जेनेरिक औषधियां...	12
7. आमंत्रित आपदा के...	13
8. क्षमा तथा न्याय...	15
9. आर्थिक वृद्धि दर विकास...	17
10. सत्य कभी पीछे मुड़कर...	18
11. गतिविधियां एवं समाचार...	19
12. गांधीजी की आर्थिक...	20

कविताएं

उपजाऊ खेत

उपजाऊ खेत
इतनी उपज दे जाते
कि वर्ष-भर के लिए
किसान निश्चिंत हो जाते
और फुरसत में चौपाल लगाते

उपजाऊ खेत
इतनी उपज दे जाते
कि अतिरिक्त को बेचकर शहर में
किसान नमक-मसाला, कपड़ा-लत्ता
गृहस्थी के सामान घर ले आते
लेकिन शायद इससे ज़्यादा कुछ न पाते
नहीं तो वे क्यों बेच जाते
अपने उपजाऊ खेत

बिकते-बिकते
अब गोभी, आलू, टमाटर के
कुछ प्लॉट रह गये हैं शेष
कल वे भी दृश्यांतरित हो जायेंगे
कुछ और ऊंची क्रीमत पाकर

वहां भी छोटे-बड़े मकान नज़र आयेंगे
जिन्हें लोग बतायेंगे अपना घर
और वे घर
स्वर्ग हों या नर्क
महानगर का हिस्सा हो जायेंगे

तब गोभी, आलू, टमाटर के इन खेतों में
गोभी, आलू, टमाटर की टिकिया बिकेंगी
और बहुत कुछ
जो चाहिए

जबकि अपने समाप्त क्रिस्से के बाद
उपजाऊ खेतों की आत्माएं
कहीं दूर जंगलों में मंडरायेंगी
एक नया आकार पाने के लिए

कूड़ा निस्तारण की नयी योजना

-केशव शरण

अब सड़क पर फेंका नहीं जाता कूड़ा
अब गली में रक्खा नहीं जाता कूड़ा
कि मेहतरानी गली बुहारे
और मेहतर कूड़ा उठाये
और इससे पहले
कूड़ा बीनने वाले
और कुत्ते
और सांड
अपनी-अपनी ज़रूरत
और पसंद की चीज़ें
पा लें
यानी वे भी कुछ कमा-खा लें
अब यह कूड़ा सीधे संयंत्रों में जाता है
बिना नागा
जिनको लेने आता है
गणवेश में
कोई युवा
सीटियां बजाता
दरवाजे पर
और घर से निकलती है
कोई लड़की, कोई स्त्री
जो अपनी बाल्टी का कूड़ा
उसकी बाल्टी में डाल जाती है चुपचाप
कूड़ा निस्तारण की यह नयी योजना
जब से लागू हुई है
मेयर का सिरदर्द घट गया है
इसका मतलब
योजना सफल है
कंपनी सफल है
लेकिन कुत्ता दुर्बल है
और सांड का वज़न घट गया है
कूड़ा बीनने वालों का क्या हाल है
खुदा जाने!

लोक स्वराज्य या ग्राम-स्वराज्य का काम करने वालों के सामने एक सवाल अकसर यह आता है कि क्या इसमें राजसत्ता की कोई भूमिका नहीं होगी। या क्या राजसत्ता के माध्यम से लोक-स्वराज्य आ सकता है?

यदि लोकसत्ता बुनियादी रूप से राजसत्ता से भिन्न है, तो वह राजसत्ता के माध्यम से कैसे आ सकती है। उदाहरण के लिए स्थानीय स्वशासन के नाम पर पंचायत राज बिल के माध्यम से ग्राम स्वराज्य नहीं आ सकता है। क्योंकि अंततः यह भी राजसत्ता का एक स्थानीय प्रतिरूप है। इसकी मूल स्वीकृति राजसत्ता की सैन्य शक्ति, दण्ड शक्ति एवं वित्तीय शक्ति से उपजती है तथा उन पर निर्भर करती है। राज करने वाले बदलते रहते हैं, लेकिन राजसत्ता बनी रहती है तथा उसके ये आधार बने रहते हैं। अर्थात् हिंसा शक्ति, दण्ड शक्ति एवं वित्तीय शक्ति की निरंतरता बनी रहती है।

दूसरी ओर हमें समझना होगा कि लोकसत्ता की मूल स्वीकृति का आधार क्या होगा एवं इसमें किसकी निरंतरता बनी रहेगी। लोकसत्ता की निरंतरता, लोक की निरंतरता से जुड़ी है। अर्थात् व्यक्ति-समूह बदलते रहते हैं, लेकिन लोकसत्ता की निरंतरता बनी रहनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि लोक स्वराज्य का मूल लोक की निरंतरता में निहित है, किसी एक कालखंड या स्थान में उपस्थित व्यक्ति समूहों में नहीं। और लोक की यह निरंतरता उसके मूल्यों में निहित होती है। लोक के ये मूल्य राजसत्ता के मूल्यों से भी निरपेक्ष होते हैं तथा पूंजीवादी सत्ता के मूल्यों से भी निरपेक्ष होते हैं। ये हिंसामूलक एवं दण्ड शक्तिमूलक मूल्यों से भिन्न अहिंसामूलक एवं समता-सहयोग मूलक होते हैं।

इसलिए लोकसत्ता के निर्माण का काम राजसत्ता के माध्यम से नहीं हो सकता है। इस निर्माण का काम, रचना का काम तो

लोक को अपनी लोकशक्ति द्वारा ही करना होगा। राजसत्ता की भूमिका केवल यह हो सकती है कि लोकसत्ता या लोक-शक्ति के बनने में राजसत्ता बाधक न बने। हमने देखा है कि राजसत्ता ने उन क्षेत्रों से अपने को समेट लिया है जहां-जहां पूंजीवादी सत्ता का विस्तार होता गया। लेकिन लोकसत्ता के निर्माण में राजसत्ता ने स्वयं को कभी भी विसर्जित नहीं किया है। अतः राजसत्ता की भूमिका, अहिंसक क्रांति के संदर्भ में, यही हो सकती है कि वह दोहन, शोषण व अन्याय की जो व्यवस्थाएं हैं, जो नीतियां हैं उन्हें खतम करे। लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब लोक आंदोलन का दबाव बना रहे। सत्याग्रह की निरंतरता ही ऐसी परिस्थितियों का निर्माण कर सकेगी।

इस संदर्भ में हमें लोकतंत्र को भी पुनः परिभाषित करना होगा। लोकतंत्र का यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति की उत्पादक क्षमता या भोग की मात्रा बढ़ा दी जाए एवं इनके लिए उसकी स्वतंत्रता का दायरा बढ़ा दिया जाए। स्कूल, अस्पताल, सड़क, बिजली या रोजगार एवं उपभोग के सामान का बढ़ना तथा विकास के अन्य पैमानों का बढ़ना लोकतंत्र नहीं है। यह तो राजतंत्र या अन्य प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में भी सम्भव है। अंग्रेजी शासनकाल में वे इनमें से कुछ चीजें मुहैया करा रहे थे, तथा कुछ अन्य को मुहैया कराने का वादा भी कर रहे थे। उन्होंने ऐसी व्यवस्थाएं भी बनायी थीं कि देने का कार्य शासक वर्ग का है, अतः विकास को भी देने/लाने का कार्य शासक वर्ग का ही है।

जबकि लोकतंत्र का मूल मंत्र यह है कि शासन करने का अधिकार कुछ लोगों के हाथ में सीमित न हो, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक नागरिक शासन की क्षमता अर्जित करें तथा शासन करने में बराबर की भागीदारी करें।

निर्णय लेने, उनका क्रियान्वयन करने तथा उनके लाभ को सबमें समान रूप से बांटने की क्षमता अर्जित करने से ही हम शासन करने में बराबर की भागीदारी की दिशा में बढ़ सकेंगे, सार्थक लोकतंत्र की ओर बढ़ सकेंगे। ऐसा सार्थक लोकतंत्र ही, लोकसत्ता एवं लोक स्वराज्य के सह-अस्तित्व में रह सकता है।

ऐसे सार्थक लोकतंत्र का तंत्र भी अभी के आधिपत्य-प्रधान तंत्र से पूरी तरह भिन्न होगा। वह तंत्र अहिंसामूलक होगा तथा उस नये तंत्र के लिए नयी प्रेरणा व क्षमता वाले मनुष्य का भी निर्माण होना होगा। नये मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया भी अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया का एक अंग होगी। अहिंसा को आत्मसात् करना, इसे जीना, इसे विस्तार देना व इसे गहरा बनाना, इस प्रक्रिया के विभिन्न पक्ष होंगे।

अहिंसक श्रम-शक्ति इसका एक अभिन्न हिस्सा होगी। अहिंसक श्रमशक्ति द्वारा जो रचना होगी तथा जो शासन करने की बराबरी की भागीदारी होगी, वही सच्चा रचनात्मक कार्य होगा। अहिंसक श्रम-शक्ति ही पूंजी की शक्ति का रूपांतरण कर सकेगी। आधिपत्यमूलक से उसे समतामूलक बना सकेगी। पूंजी की शक्ति को लोक की शक्ति का एक हिस्सा बनना होगा। आज तो पूंजी की शक्ति लोक की शक्ति के हास का माध्यम बनी हुई है। जब लोक की निरंतरता की अवधारणा एवं पूंजी की निरंतरता की अवधारणा स्पष्ट होगी तो यह भी स्पष्ट होगा कि स्वामित्व के विचार की जगह ट्रस्टी के विचार के विस्तार से ही, पूंजी की शक्ति स्वतंत्र शक्ति होने के बजाय लोक की शक्ति का एक हिस्सा कैसे बन सकेगी। लेकिन यह कार्य भी राजसत्ता के माध्यम से नहीं, बल्कि लोकसत्ता-लोकस्वराज्य के माध्यम से ही सम्भव होगा।

बिमल कुमार

क्या राजनीति आन्दोलन का हिस्सा है?

□ बाबूराव चन्दावार

लोकसभा के चुनाव संपन्न किए जायेंगे। चुनाव संपन्न कराये जाने की संभावना भी जतायी गयी है। विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा चुनाव प्रचार अभियान चलाये जा रहे हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था की यह अनिवार्य जरूरत है। लेकिन चुनाव का जो स्वरूप उभरने की संभावना दिखायी पड़ती है, इसके जो संकेत मिल रहे हैं, उन्हें देखने-समझने पर मन में प्रश्न उभरता है कि संसदीय लोकतंत्र का भविष्य क्या होगा। संसदीय लोकतंत्र पर जो अपनी आस्था अब तक बनाये हुए हैं, वे सभी इस पर अवश्य सोचते ही होंगे। क्योंकि संसदीय लोकतंत्र को चुनाव की हार-जीत में सीमित करके ही सोचते रहने का एक सिलसिला वर्षों से चलते आया है। अब स्थिति अन्य तरह की हो गयी है। क्योंकि संसदीय लोकतंत्र के अंतर्विरोध जिस अनुपात में प्रस्तुत होते रहे हैं, वह एक ऐसी दिशा में ले जा सकते हैं जिनकी आज तक कल्पना नहीं की गयी थी। आज संसदीय लोकतंत्र के अंतर्द्व द्वि जिस सीमा तक प्रस्तुत होते रहे हैं, उसमें राजनैतिक स्वाधीनता को किसी प्रकार से क्षति पहुंच पाने की संभावना नहीं दीख पड़ती थी। लेकिन अब राजनैतिक स्वाधीनता पर चोट की जाने लगी है, जिससे राजनैतिक बिखराव के लिए अवसर बनते रहने की संभावना देखी जा रही है। अराजकता एवं अस्थिरता इसके दो आयाम स्पष्ट होने लगे हैं। किसी भी एक राजनैतिक दल को बहुमत प्राप्त नहीं हो पाने से जो स्थिति बनती है, उससे राजनैतिक अस्थिरता के लिए अवसर बनते ही हैं। इसलिए राजनैतिक अस्थिरता को स्थिरता में लाये जाने के उपाय किये जाते रहे हैं। क्योंकि अराजकता में स्थिरता

के लिए अवसर बनते ही नहीं हैं। किसी वजह से वह बन भी गये तो भी उन्हें पनपाया जाना संभव नहीं होता है। राजनैतिक अस्थिरता एवं अराजकता दोनों का अपना स्वभाव या स्वधर्म होता है जिनका आपस में मेल बैठ नहीं पाता है। किसी राष्ट्र की समस्याग्रस्त अवस्था में मेल कभी भी नहीं बैठा है। इसे वास्तविक दृष्टि से देखना-समझना होगा एवं उसे परख लेना होगा।

स्वाधीनता को अक्षुण्ण नहीं रख पाने के संकेत : सबसे पहले राजनैतिक अस्थिरता ही समझ लेना चाहिये। राजनैतिक अस्थिरता द्वारा अराजकता की दिशा में बढ़ पाना संभव होता है, जिस पर संसदीय लोकतंत्र की राजनीति माननेवाले एवं राजनीति करनेवाले सभी सोच नहीं पाते हैं। राजनैतिक सत्ता की लालसा इन्हें सोचने के लिए प्रवृत्त करती ही नहीं है। एक तरह की सत्ता-लालसा की मदहोशी इन्हें घेर लेती है और उन्हें इसकी सीमा के बाहर जाने नहीं देती है। इसलिए सत्ता-लालसा की मदहोशी में ही राजनैतिक अस्थिरता का निर्माण होता है, जो इस समय राजनैतिक स्वाधीनता पर चोट करने वाली हो भी गयी है। इस देश की राजनैतिक स्वाधीनता स्वाधीनता के लिए किए गए आंदोलनों की देन या नतीजा है जिस पर से राजनैतिक दलों का ध्यान पूरी तरह से हट गया है। राजनैतिक दलों का ध्यान जब सत्ता की लालसा पर केंद्रित हो जाता है, तब स्वाधीनता आंदोलन से ध्यान हट जाना ही स्वाभाविक हो जाता है। राजनैतिक दल इसे मानकर चल नहीं पाते हैं। उन्हें स्वाधीनता आंदोलन का महत्त्व जँचता नहीं है। जो स्वाधीनता आंदोलन की विरासत लेकर ही

अपना अस्तित्व बना पाये हैं और उसका लाभ ले पाये हैं वे सभी राजनैतिक दल सत्ता-लालसा के चलते ही स्वाधीनता के महत्त्व को भूल बैठे हैं। इस स्थिति में राजनैतिक स्वाधीनता मूलतः स्वाधीनता आंदोलनों के उद्देश्यों से हटकर ही रह जाती है। वह इस समय मात्र राजनैतिक गतिविधियों तक ही सीमित हो कर रह गई है। इससे स्वाधीनता आंदोलन की गरिमा की क्षमताहीन अवस्था बन गयी है। इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्वाधीनता आंदोलनों की गरिमा भुलाया जाना ही स्वाभाविक हो गया हो तो स्पष्ट है कि इसके द्वारा स्वाधीनता सुरक्षित कर पाना संभव होगा ही नहीं। इसके संकेत उसी समय मिल गये थे जिस समय महात्मा गांधी ने स्वाधीनता आंदोलन चलानेवाले कांग्रेस दल को विसर्जित कर 'लोक सेवक संघ' बना देने के लिए सुझाव दिया था।

भारत का स्वाधीनता आंदोलन जिसके परिणामस्वरूप भारत को राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त हो पायी है, उसका महत्त्व यदि नहीं माना जाता हो तो राजनैतिक स्वाधीनता सत्ता की लालसा में ही सभी राजनैतिक दल उलझाकर रख देंगे, इसमें संदेह नहीं करना चाहिए। इस उलझी हुई स्थिति में ही इस समय की लोकसभा के चुनाव संपन्न कराये जा रहे हैं। इसके नतीजे जो भी निकलेंगे वे भारत की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखनेवाले नहीं होंगे, इसके संकेत अभी से मिलने लगे हैं।

परिवर्तनकारी तथा जनकल्याणकारी मूल्यात्मक धारणा : जिन्होंने अपने लिए राजनैतिक सत्ता की लालसा पालपोसकर नहीं रखी थी और जो महात्मा गांधी के सुझाव के अनुसार 'लोक सेवक संघ' अब जिसे 'सर्व सेवा संघ' कहा जाता है, बनाया भी

है, वे और उनकी धारणाएं इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हो गयी हैं। क्योंकि महात्मा गांधी ने जिस 'लोक सेवक संघ' की कल्पना की थी उसके प्रति इन्हें अपने लिए विशेष दायित्व बनता है, मान लिया था। पर 'लोकसेवक' की भूमिका निभाते हुए राजनीति के आकर्षण में चले जाने की मानसिकता रखना भी उचित नहीं माना गया। इसका ध्यान रखते हुए विनोबाजी ने लोकसेवक की भूमिका निभाने के लिए ही राजनीति के आकर्षण से दूर रहने के लिए कहा था तथा 'सर्व सेवा संघ' के लोकसेवकों को इसके लिए बाध्य भी किया था। राजनीति द्वारा राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा लोकसेवक की भूमिका पर जब आक्रमण किया जाता है तब लोकसेवक को क्या भूमिका अपनानी होगी, इस विषय पर प्रश्न उपस्थित होने पर जयप्रकाश नारायण ने स्वाधीनता सेनानी होने के नाते सफलतापूर्वक समाधान निकाल लिया था। भारत की स्वाधीनता पर संकट के बादल मँडराने लगे तब जेपी ने उसे निष्प्रभ करने के लिए स्वाधीनता सेनानी तथा लोकसेवक दोनों के नाते 1974 में स्वाधीनता आंदोलन फिर छेड़ दिया था, जिसके परिणामस्वरूप 1977 में एक अनोखा सत्ता-परिवर्तन भारत में हो पाया था। 'लोकसेवक' की भूमिका में स्वाधीनता को अक्षुण्ण करने का संघर्ष जिसे महात्मा गांधी ने स्वाधीनता का 'सत्याग्रह संघर्ष' ही कहा था उसे निभाते हुए जेपी ने इस देश की स्वाधीनता सुरक्षित कर ली थी। वर्तमान में स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखने का प्रश्न फिर एक बार उपस्थित हो गया है। 1977 और 2014 के बीच वाले सैतीस वर्षों की अंतरावधि में जो स्थिति बनी है वह जेपी द्वारा निर्देशित की गयी 'संपूर्ण क्रांति' की अगली रणनीति नहीं बन पाने की त्रुटि रह जाने से प्रभावित हो पायी है। इससे जो स्थिति बनी है, उसका विश्लेषण नहीं किया गया

है। विश्लेषण तब किया जाता है, जब परिस्थिति के अंतर्गत चलती रही गतिविधियों की अपेक्षित समीक्षा कर लेना संभव हो पाता है। स्वाधीनतामूलक बुनियादी परिवर्तन के लिए अवसरों की खोज कर लेना संभव नहीं हो पाया है। इस अंतरावधि में कई परिवर्तनकारी कहे जाने वाले आंदोलन किए गये हैं जिन्हें जनआंदोलनों में शुमार किया जाता रहा है। इस तरह के सभी जनआंदोलन का स्वरूप तथा चरित्र देख-परखकर किसी ऐसे निर्णय तक पहुंच पाना संभव नहीं हो पाया है जिसके द्वारा जनआंदोलनों के अगले चरणों की कल्पना की जा सके। कई तरह के आंदोलन किये जाते रहे हैं। इनमें से कितने को वास्तव में जनआंदोलन कहा जा सकता है, इसे स्पष्ट नहीं किया गया है। जिन उद्देश्यों से जनआंदोलन किये गये वह स्पष्ट नहीं हो पाने से कुछ ऐसी समस्याएं उपस्थित हुई हैं जिनका समाधान नहीं किया जा रहा है। बुनियादी परिवर्तन के लिए ही जनआंदोलन किये जाते हैं, तब उनका उस तरह का चरित्र उभरना चाहिए जो किन्हीं भी संदेहों के दायरे से बाहर स्पष्टता से दिखाई देने लगे।

जनआंदोलनों का संकल्प अवश्य घोषित किया गया। लेकिन वास्तव में जनकल्याणकारी कार्यक्रमों में ही बेवजह उलझकर रह जाने से आंदोलनों को संदेह के दायरे में रखा जा रहा है। बुनियादी परिवर्तन की मूल्यात्मक धारणा तथा जनकल्याणकारी मूल्यात्मक धारणा दोनों भिन्न धारणाएं हैं; इनकी कार्य पद्धति भी भिन्न है। माना गया है कि आंदोलन चलाने के लिए साधनों को जुटाना जरूरी हो जाता है। साधन जहां से तथा जिस तरह से जुटाए जाते हैं, उसका स्वरूप ही मूलतः शंकास्पद दायरे में चले जाने की संभावना बनती है। कई तरह के विवाद खड़े किए गए हैं, जिनका अब तक अंत नहीं हो पाया है। आर्थिक

सहायता करने वाले पश्चिमी राष्ट्रों के संगठन जो भारत के आंदोलन तथा स्वयंसेवी रचना के कार्यों में जुटे हुए संस्था-संगठनों पर अपना प्रभाव जमा कर रखे हुए हैं जो स्वयंसेवी संस्था-संगठनों को शंकास्पद घेरे में लाकर खड़ा कर चुका है।

सेवा-कार्य करने तथा आंदोलन करने के लिए भी साधनों की आवश्यकता होती ही है। पर जहां से, जिस तरह से साधन जुटाये जाते हैं, वे देने वालों की इच्छा-आकांक्षा तथा मर्जी पर अवलंबित होते हैं।

भारत में किए जा रहे जनआंदोलन विदेशी राजनैतिक शक्तियों द्वारा प्रेरित रहते हैं। इसे तथ्यहीन कहना हो तो अवश्य ही कहा जा सकता है। पर स्पष्ट है कि शंकास्पद स्थिति से उबरना संभव नहीं होता है। परिवर्तन के नाम से चलाये जानेवाले आंदोलन जिन्हें जन-आंदोलन संबोधित करके प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जाता रहा है उन पर आपत्तिजनक विदेशी हस्तक्षेप के प्रभाव का कलंक मढ़ते रहने से शंकास्पद अवस्था से वे इस समय गुजर रहे हैं। आंदोलनों के लिए आवश्यक साधनों को जुटाने को विशुद्ध तौर-तरीके ही अपनाने होंगे जिसमें शंकास्पद स्थिति से बचना संभव हो सके। इस पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। क्योंकि स्वयं को जनआंदोलनकारी कहलाने वाले भी विदेशी आर्थिक सहायता पाकर अपने साधन जुटाते रहे हैं जिन्हें हम सभी जानते हैं। परिवर्तनकारी आंदोलनों के साथी देश में कई तरह के गैरशासकीय संस्था-संगठन चला रहे हैं जिनका परिवर्तनकारी दृष्टिकोण प्रदूषित हो गया है। इसलिए परिवर्तनकारी मूल्यात्मकता तथा जनकल्याणकारी (वेलफेअर) मूल्यात्मकता दोनों में जो अंतर है, उसे जानकर ही बुनियादी परिवर्तन की दिशा में जो बढ़ना चाहते हैं उनके द्वारा यदि जनआंदोलन किए जा रहे

हों, तो उनका अवश्य महत्त्व बनता है। जो जनकल्याणकारी प्रवृत्तियों में उलझ जाते हैं उनसे बुनियादी परिवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसलिए जनकल्याणकारी कार्यक्रमों द्वारा जो अपने गैरशासकीय संस्था-संगठन चलाते रहते हैं वे राजनीति की गतिविधियों में किसी न किसी रूप में शामिल हैं, जिससे इस तरह के संस्था-संगठन (एनजीओ चलाने वाले) राजनीति में रुचि लेने लगते हैं और चुनाव आदि प्रवृत्तियों में भी प्रत्यक्ष या परोक्ष संलग्न हो ही जाते हैं। परिणामतः वे बुनियादी परिवर्तन की भूमिका से हट जाते हैं। वे यथास्थिति को बनाये रखने में ही स्थिरता पा लेते हैं। इसलिए समझना होगा कि बुनियादी परिवर्तन चाहने वालों को अपनी पारदर्शी भूमिका लोगों के समक्ष रखनी ही होगी। बुनियादी परिवर्तन के कार्यक्रम सफल तब होंगे जब परिवर्तनकारियों के प्रति प्रतिबद्धता का एहसास लोगों को हो सकेगा।

इस दृष्टि से गांधीजन-सर्वोदयी मित्रों को अपने कार्य तथा कार्यप्रणाली की समीक्षा खुलकर कर लेनी होगी। शायद गांधीजन सर्वोदय वालों तथा संपूर्ण क्रांति में मानने वालों की स्थिति भी इसी तरह की बनती जा रही है।

संस्था-संगठनों की उलझनें : गांधीजन सर्वोदय वालों की स्वाधीनता के प्रति अपनी एक विशिष्ट भूमिका है, जिसपर प्रहार होते रहेंगे तो भी अपनी भूमिका पर उन्हें अडिग रहने की आवश्यकता है। जेपी ने कहा था कि सर्वोदय का 'रेडिकलायजेशन' किया जाना चाहिए। पर इसे भूलकर 'राजनीतिकरण' (पोलिटिकलायजेशन) की तरफ बढ़ने का रुझान इस समय कुछ गांधीजन तथा सर्वोदय के साथियों में दिखने लगा है। इसे घातक ही मानना होगा। जिनकी भूमिका 'बुनियादी क्रांति' की है, उन्हें परिस्थिति का समग्रता से आकलन

कर लेना होगा। इस में संस्था-संगठन चलाने का ही लक्ष्य प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण हो जाता है, बुनियादी परिवर्तन का लक्ष्य गौण हो जाता है। जो बुनियादी परिवर्तन में मानते हैं, उन्हें इस तरह संस्था-संगठनों के लक्ष्यों में उलझकर रहना ठीक नहीं है। क्योंकि संस्था-संगठनों में ही उलझने से ऐसी स्थिति बनती है। संस्था-संगठन चलाने का ही लक्ष्य प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण हो जाता है, बुनियादी परिवर्तन का लक्ष्य गौण हो जाता है। महात्मा गांधी ने इसीलिए 'नव-संस्करण' का जो महत्त्व दिया था, वह बुनियादी परिवर्तन के लक्ष्य को पाने के लिए ही दिया था।

विभिन्न विचारधारा में माननेवालों को भी संवाद की भूमिका में लाने की आवश्यकता होती है। स्थिति कुछ इस तरह की बनी है जिसमें संस्था-संगठन एवं परिवर्तनकारी आंदोलन रुक गये हैं, लक्ष्य की ओर आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं क्योंकि संवाद द्वारा सोचने के लिए निर्णय प्रक्रिया चलाने के लिए जो ऊर्जा मिलनी चाहिए वह नहीं मिल पा रही है। कई तरह के मतभेद-विचारभेद रखते हुए भी यदि संवाद की प्रक्रिया चलायी गई, तो उससे मतभेद-विचारभेद नहीं हुए तो भी आगे बढ़ने की ऊर्जा अवश्य मिलेगी। संस्था-संगठनों को इस पर सोचना होगा।

अँधेरे रास्तों पर चलना : बुनियादी परिवर्तन की दृष्टि से जहां तक रणनीति बनाने तथा उसे निर्दोष स्थिति प्रदान करने का प्रश्न है, उस पर गंभीरता से सोचने की आवश्यकता है। इसे मुक्त-चिंतन के दायरे में लाने की भी आवश्यकता है। इस दृष्टि से सोचने पर जो बुनियादी परिवर्तन हम चाहते हैं, उसका संवैधानिक स्वरूप एवं लोकाभिक्रम द्वारा ही परिवर्तन साध लेने का स्वरूप, इसे दो हिस्सों में सोचने की आवश्यकता होगी। क्योंकि इसे टाला जाता रहा है। टालते रहने से संवैधानिकता

एवं लोकाभिक्रमता तथा उसकी उपक्रमशीलता दोनों को समझ पाना संभव नहीं हो रहा है, जिससे निर्दोष रणनीति बना लेने की दृष्टि प्राप्त नहीं की जा सकती है।

राजनैतिक व्यवस्था संवैधानिकता के आधार पर ही बनायी गई है, जिसमें से संसदीय लोकतंत्र का निर्माण हुआ है। भारतीय स्वाधीनता के आंदोलनों में सत्याग्रह का दृष्टिकोण अपना कर ही महात्मा गांधी ने स्वाधीनता का संकल्प निर्देशित किया था जिसे स्वाधीनता का संकल्प ही कहा जाता है, उसका जो स्थान भारत के संविधान में बना हुआ है इस पर राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के उपरान्त सोचा ही नहीं गया है। भारत का संविधान स्वाधीनता के संकल्प से अछूता ही रखा गया है, जिसे स्वाधीनता के दृष्टिकोण तथा संकल्प की उपेक्षा करने जैसा ही मानना भी होगा। स्वाधीनता के सत्याग्रहमूलक संकल्प में गांधी की स्वाधीनता प्रमुखता से निर्देशित की गई थी जिसमें महात्मा गांधी के अनुसार 'ग्रामस्वराज्य' तक पहुंचाने का इरादा स्पष्ट कर दिया था। संविधान के अनुसार ही पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया गया, उसमें गांधी की स्वाधीनता पूरी तरह से उपेक्षित रखी गई है, जिससे अनियंत्रित यांत्रिक उद्योगीकरण ने यांत्रिकीकरण को बढ़ावा दिया है। इस यांत्रिक उद्योगीकरण ने यांत्रिकीकरण को ही अपनाकर गांधी की स्वाधीनता में ग्रामीण उद्योगों का जो महत्त्वपूर्ण स्थान बना हुआ था, उसे मिटा देने की भरसक कोशिश की गयी है। परिणामस्वरूप गांधी के कुशल, स्वाश्रयी तथा स्वावलंबी ग्रामोद्योग समाप्त किये गये हैं। भारत की राजनैतिक स्वाधीनता गांधी को पराधीन करके उन्हें नष्ट कर देने की बेरोक प्रक्रिया चला रही है। इस तरह गांधी के ग्रामीण, रोजगार के अभाव में विस्थापित होकर नगरों-महानगरों में पलायन करने के लिए विवश हो गये। इसलिए भारत

की राजनैतिक स्वाधीनता के विरोध में ग्रामीणों में यदि विद्रोह की भावना पनपायी गयी तो उसे स्वाभाविक ही मानना होगा। परिणामस्वरूप भारत की स्वाधीनता ग्रामीणों की या वास्तविक अर्थ में लोगों की स्वाधीनता नहीं है। इस दृष्टि से राजनैतिक स्वाधीनता के प्रयोजन तथा उपयोगिता पर सोचना होगा तथा राजनैतिक स्वाधीनता लोगों की अपनी स्वाधीनता बन सके, इस दिशा में आगे बढ़ना भी होगा। बुनियादी परिवर्तन को लक्ष्य बनाकर जो परिवर्तनकारी आंदोलन करते आये हैं, उन्हें अपनी रणनीति में ग्रामीणों तथा उनके गांवों को प्रतिष्ठित करने का प्रश्न सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना लेना चाहिए। इस तरह जनआंदोलनों के हिमायती शायद अपने आंदोलनों का राजनीतिकरण करने में जुट गए होंगे। रैंडिकलायजेशन के मूल्यों के तहत बुनियादी परिवर्तन में माननेवाले दलगत संकुचित राजनीति की दिशा में ही बढ़ते रहेंगे, इसमें संदेह नहीं करना चाहिए। इस पर आंख मूंदकर बैठे रहना ठीक नहीं होगा। गैरशासकीय स्वयंसेवी संस्था-संगठन जिन्हें संक्षेप में 'एनजीओ' कहा जाता है उनकी विदेशी आर्थिक सहायता से साधन जुटा लेने की शक्ति इस समय कल्पनातीत कही जा रही है। इसलिए 'एनजीओ' काफी शक्तिशाली बन भी गये हैं। शासन-प्रशासन में हस्तक्षेप करते रहने की इनकी क्षमता भी बढ़ गयी है। इसी के बल पर इधर राजनैतिक दल के रूप में उनका नवीनतम निर्माण किया भी जा रहा है। 'आम आदमी' के नाम से जिस दल का निर्माण इधर हुआ है वह इससे प्रभावित है। 'एनजीओ' द्वारा शासन-प्रशासन में अपना प्रभुत्व जमाकर राजनैतिक सत्ता हथिया लेने की विदेशी महाशक्तियों की एक साजिश है। इस देश में विदेशी हस्तक्षेप कई तरह से होता है। भारत की संवैधानिक राजनैतिक सत्ता

विदेशी महाशक्तियों के अंतर्राष्ट्रीय खेल में यदि उलझ गयी, तो भारत की राजनैतिक स्वाधीनता का क्या होगा?

सत्याग्रह से प्रेरित संकल्प से हटकर परिवर्तनकारी आंदोलनों का कोई लक्ष्य निर्धारित किया जाना स्वाधीनता के प्रति द्रोह करने जैसा ही माना जायेगा। परिवर्तनकारी संगठन तथा उनके आंदोलनों को अपना राजनीतिकरण कर लेने के पक्ष में सोचने का कोई सशक्त या ठोस आधार होना ही चाहिए, जो इस समय दिख नहीं रहा है। जो राजनीति करने में ही रुचि रखते हैं वे अवश्य राजनीति करेंगे ही। परिवर्तनकारी आंदोलन करने के पक्ष में जब वे रहना चाहते हैं तो परिवर्तन एवं राजनीति दोनों का किस तरह का मेल बिठाया जायेगा, इस पर भी सोचना ही होगा। जो समाजवादी खेमे के माने जाते हैं, वे परिवर्तन के लिए आंदोलन करने वाले भी माने जाते होंगे। समाजवादी विचारधारा में राजनीति करना जायज माना ही जाता है। क्योंकि राज्यसत्ता प्राप्त करके परिवर्तन की प्रक्रिया चलाया जाना सम्भव हो सकता है, इसमें वे मानते हैं और विश्वास भी करते हैं। समाजवादी जेपी ने इसका त्याग करके वास्तविक परिवर्तन के आंदोलन में शामिल होने के लिए सर्वोदय में प्रवेश किया था, इसे भी समझ लेना होगा। समाजवादी सभी राजनीति करना चाहेंगे तो उसे आपत्तिजनक नहीं ही माना जायेगा। राजनीति द्वारा बुनियादी परिवर्तन बनता ही नहीं है, इसे जिन्होंने मान लिया है, उन्हें अपनी निर्दलीय आस्था एवं उसकी निष्ठा को बचा लेना होगा। वे बुनियादी परिवर्तन के प्रति आस्थावान कहे जायेंगे और पहचाने भी जायेंगे। इसलिए किसी को भी अपनी पहचान खोने की आवश्यकता नहीं है। समाजवादी खेमा अपनी पहचान को बरकरार रखते हुए यदि राजनीति करना चाहेंगे

तो वे अवश्य कर सकते हैं। गांधीजन-सर्वोदय के साथियों का या संपूर्ण क्रांति में मानने वालों की पहचान इससे भिन्न या अलग तरह की रही है तथा राजनीति से मुक्त रहने की ही वह पहचान रही भी है। इसका ध्यान उन्हें रखना ही होगा।

जो राजनीति करना चाहते हैं, वे यदि राजनीति को परिवर्तनकारी आंदोलन का एक हिस्सा मानते हों तो उसका स्वरूप स्पष्ट कर लेने की आवश्यकता है। सत्याग्रह से प्रेरित स्वाधीनता आंदोलन के संकल्प से हटकर ही इस देश में राजनीति की जा रही है। इसलिए चाहे तो इस पर बहस की जा सकती है और बहस करनी भी चाहिए। पर दलगत राजनीति की संकुचितता एवं संकीर्णता दोनों में उलझकर इस बहस को नहीं चलाया जा सकता, इतना तो स्पष्ट है ही।

चित्त-शुद्धि के बिना स्वराज्य कैसा?

“हमें अंग्रेजों से लड़ना कठिन मालूम पड़ता था। लेकिन आज मैं देखता हूँ, तो वह लड़ाई बहुत ही सरल प्रतीत हो रही थी। किन्तु आज की यह लड़ाई कठिन लग रही है। अंग्रेजों से तो हम, तिल का ताड़ बनाकर, कुछ भी कह सकते थे। लेकिन आज तो हम खुद ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। कर्तव्य सामने उपस्थित होने पर उससे भागने लगते हैं। बिना-शुद्धि के स्वराज्य कभी स्थापित नहीं हो सकता। हममें शुद्धि नहीं थी, इसलिए ऐसा राज्य हम लोगों के हाथ लगा। मेरे विचार से यह स्वराज्य है ही नहीं, 'स्वराज्य' का सच्चा अर्थ यही है कि मानव अपनी शासन-सत्ता के अन्तर्गत स्वयं सरलता से जीये और अपने आसपास के लोगों को जिला सके।” —महात्मा गांधी

पौष्टिकता की अनूठी विरासत

□ बाबा मायाराम

11 जनवरी, 2014 की सुबह मध्य प्रदेश के डिण्डौरी जिले के गौरा गांव में गोबर से लिपे-पुते आँगन में बैगा आदिवासी बैठे हैं। ये अपने-अपने घर से पारम्परिक अनाजों से भोजन बनाकर लाये हैं। कोई ज्वार की रोटी लाया है तो कोई कुटकी का भात। कोई मक्के की रोटी लाया है तो महुआ का लड्डू। कोई डोंगजीकांदा, बैचांदीकांदा और विरारकांदा लाया है तो कोई सलहार का पेज।

मैंने इन्हें देखा तो देखता रह गया। इनकी रंग-बिरंगी पोशाकों की तरह ही इनके भोजन और व्यंजन थे। न केवल ये रंग-रूप में भिन्न थे बल्कि इनमें विविधता थी। पौष्टिकता से भरपूर थे और स्वाद में भी बेजोड़ थे। पूरा संतुलित भोजन था। माहुल के पत्तों में अनाजों और व्यंजनों को सजाया गया था। साथ में कागज पर स्केच पेन से नाम भी लिखा गया था।

यहां ढाबा, अजगर, तलाईडबरा, कांदाबानी, गौरा-कन्हारी, जीलंग और चपवार वगैरह गांवों के लोगों ने हिस्सा लिया। वे उनकी बेवर खेती में होने वाले पारम्परिक अनाजों के व्यंजन के साथ विभिन्न प्रकार की साग-सब्जी लेकर आये थे, जिनमें कंद-मूल, पत्ते, फूल और मोटे अनाज शामिल थे।

आँगन में बिछी खाट पर कोदो, कुटकी, मड़िया, सलहार का पेज, भात, रोटी, लड्डू, खीर, मक्का के लड्डू, लाई, महुआ के लाटा, लड्डू रखे थे। माहुल के पत्तों में जंगल में मिलने वाले डोंगजीकांदा, कडू गीठकांदा, बैचांदीकांदा, विरारकांदा, बड़ाईनकांदा की सब्जी थी। हरी भाजियां जैसे सिरोतीभाजी, पनिहारीभाजी, पुटपुरा, सरईपिहरी की सब्जी, जयमंगलभाजी, देबेभाजी, कुंडारीभाजी, पताल और अमटा की चटनी, मशरूम सहित करीब 100 तरह के व्यंजनों की प्रदर्शनी लगायी गयी थी।

ढाबा गांव के लालसाय ने बताया कि हम कोदो का भात ठंड में खाते हैं, इसकी तासीर गरम होती है और बहुत पौष्टिक होता है। कोदो को महिलाओं को जचकी के दौरान खिलाया जाता है। कुटकी का पेज गरमी में खाते हैं, जो ठंडा होता है और शरीर को ठंडा रखता है।

इसी प्रकार मक्का और ज्वार की रोटी भी ठंड के दिनों में पसंद की जाती है, जो पाचक होने के साथ तासीर में गरम होती है। डोंगचीकांदा, कनिहाकांदा खाने से भूख नहीं लगती है। गीठकांदा का पीलिया जैसी बीमारी को ठीक करने के लिए भी उपयोग किया जाता है।

बैगाओं के भोजन में पेज प्रमुख है। पेज एक तरह से सूप होता है। बैगा पूरे साल भर पेज पीते हैं। पेज कम अनाज में पेट भरने का उपाय भी है। अनाज कम और पानी ज्यादा। अगर पेज बनते समय दो मेहमान भी आ जाएं तो उतने ही अनाज में पानी की मात्रा बढ़ा दी जाती है।

जब आदिवासी जंगल जाते हैं तो साथ में पेज भी ले जाते हैं। अगर जंगल में पानी नहीं मिलता तो पेज से काम चला लेते हैं। पेज कई अनाजों से बनता है। मक्का, कोदो, कुटकी आदि से पेज बनाया जाता है। अनाजों को दलिया की तरह कूटकर उसे गरम पानी में उबाला जाता है और नमक डालकर तैयार किया जाता है।

जीलंग गांव के जुमेलाल ने बताया कि मड़िया बहुत पौष्टिक होता है, जिससे कमजोरी दूर होती है। मुनगा की भाजी खाने से बहुत भूख लगती है, जिससे भरपेट भोजन खाया जा सके। यह पाचन के लिए बहुत उपयोगी होती है। बांस की करील भाजी भी कमजोरी दूर करती है और इसे जचकी के दौरान

महिलाओं को खिलाने से फायदा होता है। उन्हें भूख बहुत लगती है और वे भरपेट भोजन कर पाती हैं। गर्मी के समय शरीर को ठंडा रखने के लिए अमटा की चटनी खाते हैं। हमारे पूर्वज कांदा खाते थे। बीच में हमने कांदा खाना छोड़ दिया, अब कांदा खाना जरूरी है। जुमेलाल ने कहा, अगर हम कुटकी का भात और कांदा नहीं खाएं तो पेट ही नहीं भरता।

गौरा-कन्हारी के सरपंच रामलाल तेताम ने बताया कि पहले अस्पताल थे ही नहीं, हमारे बुजुर्ग जड़ी-बूटियों से ही इलाज करते थे और लोग भी बीमार कम पड़ते थे। उनके पास बहुत अच्छा परम्परागत ज्ञान था, जिसे हम भूलते जा रहे हैं। इसे बचाने की जरूरत है। उन्होंने कहा, मड़िया को महिलाओं को प्रसव के दौरान दिया जाता है, जो बहुत पौष्टिक होता है और इससे खून बढ़ता है।

तेताम बताते हैं कि पहले जंगल से बहुत-सी चीजें खाने को मिलती थीं और जैव विविधता की दृष्टि से भी ये महत्वपूर्ण थीं। जैसे माहुल के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा कि माहुल बहुत उपयोगी होती है। माहुल की बेल होती है और पेड़ों से लिपटी रहती है और एक-दूसरे पेड़ों में फैलती जाती है। इस बेल की छाँव में कई पशु-पक्षी और मनुष्य शरण लेते हैं।

माहुल के पत्तों से दोना-पत्तल, छाते, टोपी, बक्कल (रस्सी की तरह) बनायी जाती है। साथ ही माहुल का फल भी खाते हैं। उन्होंने खुद भून कर इस फल को खाया है। लेकिन अब वन विभाग की कूप कटाई के कारण माहुल खतम होता जा रहा है। इस तरह कई पेड़-पौधे व जीवों की प्रजातियां खतम हो रही हैं।

चपवार की भागवती ने कहा कि कुटकी→

तालाब बांधता धरम सुभाव

□ अनुपम मिश्र

जो समाज को जीवन दे, उसे निर्जीव कैसे माना जा सकता है? तालाबों में, जलस्रोत में जीवन माना गया और समाज ने उनके चारों ओर अपने जीवन को रचा। जिसके साथ जितना निकट का संबंध, जितना स्नेह, मन उसके उतने ही नाम रख लेता है। देश के अलग-अलग राज्यों में, भाषाओं में, बोलियों में तालाब के कई नाम हैं। बोलियों के कोश में, उनके व्याकरण के ग्रंथों में पर्यायवाची शब्दों की सूची में तालाब के नामों का एक भरा-पूरा परिवार देखने को मिलता है। डिंगल भाषा के व्याकरण का एक ग्रंथ हमीर नाम-माला तालाबों के पर्यायवाची नाम तो गिनाता ही है, साथ ही उनके स्वभाव का भी वर्णन करते हुए तालाबों को 'धरम सुभाव' कहता है।

लोक धरम सुभाव से जुड़ जाता है। प्रसंग सुख का हो तो तालाब बन जाएगा। प्रसंग, दुख का भी हो तो तालाब बन जाएगा। जैसलमेर, बाड़मेर के परिवार में साधन कम हों, पूरा तालाब बनाने की गुंजाइश न हो तो उन सीमित साधनों का उपयोग पहले से

बने किसी तालाब की पाल पर मिट्टी डालने, छोटी-मोटी मरम्मत करने से होता था। मृत्यु किस परिवार में नहीं आती? हर परिवार अपने दुखद प्रसंग को समाज के सुख के लिए तालाब से जोड़ देता था।

पूरे समाज पर दुख आता, अकाल पड़ता तब भी तालाब बनाने का काम होता। लोगों को तात्कालिक राहत मिलती और पानी का इंतजाम होने के बाद में फिर कभी आ सकने वाले इस दुख को सह सकने की शक्ति समाज में बनती थी। बिहार के मधुबनी इलाके में छठवीं सदी में आये एक बड़े अकाल के समय पूरे क्षेत्र के गांवों ने मिलकर 63 तालाब बनाये थे। इतनी बड़ी योजना बनाने से लेकर उसे पूरी करने तक के लिए कितना बड़ा संगठन बना होगा, कितने साधन जुटाये गये होंगे—नये लोग, नयी सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं, इसे सोचकर तो देखें। मधुबनी में ये तालाब आज भी हैं और लोग आज भी कृतज्ञता से याद रखे हैं।

कहीं पुरस्कार की तरह तालाब बना दिया जाता, तो कहीं तालाब बनने का पुरस्कार

मिलता। गोंड राजाओं की सीमा में जो भी तालाब बनता, उसे उसके नीचे की जमीन का लगान नहीं देना पड़ता था। संबलपुर क्षेत्र में यह प्रथा विशेष रूप से मिलती थी।

दंड-विधान में भी तालाब मिलता है। बुंदेलखंड में जातीय पंचायतें अपनी किसी सदस्य की अक्षम्य गलती पर जब दंड देती थीं तो उसे दंड में प्रायः तालाब बनाने को कहती थीं। यह परम्परा आज भी राजस्थान में मिलती है। अलवर जिले के एक छोटे-से गांव गोपालपुरा में पंचायती फैसलों को न मानने की गलती करने वालों से दंडस्वरूप कुछ पैसा ग्रामकोष में जमा करवाया जाता है। उस कोष से यहां पिछले दिनों दो छोटे-छोटे तालाब बनाये गये हैं।

गड़ा हुआ कोष किसी के हाथ लग जाये तो उसे अपने पर नहीं, परोपकार में लगाने की परम्परा रही है। परोपकार का अर्थ प्रायः तालाब बनाना या उनकी मरम्मत करना माना जाता था। कहा जाता है कि बुंदेलखंड में महाराज छत्रसाल के बेटे को गड़े हुए खजाने के बारे में एक बीजक मिला था। बीजक

→ पेज पीने से जचकी के दौरान महिलाओं को फायदा होता है। इसी प्रकार की हरी भाजियों को खाने से फायदा होता है। जयमंगल भाजी के बारे में बताते हैं कि वह ठंडी होती है, जिसे गरमी में खाते हैं। जंगल में मिलने वाले पकरी भाजी खाने से पतला दस्त ठीक होता है।

मशरूम की यहां कई किस्में जंगल में मिलती हैं। इन्हें सुखाकर एकत्र किया जाता है और फिर सब्जी बनाकर खाते हैं। प्रदर्शित व्यंजनों में महुआलाटा, घुईफल की सब्जी, आंवला चटनी, अरहर और उड़द बड़ा, डूमर फल की सब्जी, बांस करील की सब्जी,

बेलभूँज, चंच भाजी, पताली चटनी, रमतीला की चटनी, लोरिंग कांदा भूँज, चकोड़ा भाजी, कोदो कुटकी का चीला, गीठ कांदा, भूत कांदा, खिर कांदा, रवि कांदा, रताल कांदा, दुंगची कांदा, सरई पिहरी वगैरह खास थे।

इनमें से कुछ कांदों को कच्चा और कुछ को आलू की तरह उबालकर और कुछ कांदों को भाजी बनाकर खाते हैं। चटवा, कुम्हड़ा, ज्वार, कच्छर और अनेक प्रकार की हरी भाजियां शामिल थीं।

इस अनोखी प्रदर्शनी के प्रमुख व बीज विरासत अभियान व कार्यक्रम के संयोजक नरेश विश्वास ने कहा कि बैगाओं के पारम्परिक

मिश्रित खेती में खाद्य सुरक्षा तो होती है स्वास्थ्य सुरक्षा के साथ मवेशियों के लिए भरपूर चारा और भूसा भी उपलब्ध होता है। जलवायु बदलाव के दौर में भी मिश्रित खेती की उपयोगिता और बढ़ गयी है, जिसमें प्रतिकूल मौसम को झेलने की क्षमता होती है।

देखने में आया है कि जंगल में खाद्य पदार्थों की कमी होती जा रही है। और बैगा भी अपने खेतों में मिश्रित और बेवर (बिना जुताई) कम करते हैं इसलिए उनके भोजन में विविधता, पोषक तत्वों की कमी हो रही है। उनकी खाद्य सुरक्षा के साथ पोषण सुरक्षा भी जरूरी है। □

की सूचना के अनुसार जगतराज ने खजाना खोद निकाला। छत्रसाल को पता चला तो बहुत नाराज हुए : 'मृतक द्रव्य चंदेल को, क्यों तुम लियो उखार'। अब जब खजाना उखाड़ ही लिया है तो उसका सबसे अच्छा उपयोग किया जायेगा। पिता ने बेटे को आज्ञा दी कि उससे चंदेलों के बने सभी तालाबों की मरम्मत की जाये और नये तालाब बनवाये जायें। खजाना बहुत बड़ा था। पुराने तालाबों की मरम्मत हो गयी और नये भी बनने शुरू हुए। वंशवृक्ष देखकर विक्रम संवत् 286 से 1162 तक की 22 पीढ़ियों के नाम पर पूरे 22 बड़े-बड़े तालाब बने थे। ये बुंदेलखंड में आज भी हैं।

गड़ा हुआ धन सबको नहीं मिलता। लेकिन सबको तालाब से जोड़कर देखने के लिए भी समाज में कुछ मान्यताएं रही हैं। अमावस और पूर्ण, इन दो दिनों को कारज यानी अच्छे और वह भी सार्वजनिक कामों का दिन माना गया है। इन दिनों में निजी काम से हटने और सार्वजनिक काम से जुड़ने का विधान रहा है। किसान अमावस और पूर्णों को अपने खेत में काम नहीं करते थे। उस समय का उपयोग वे अपने क्षेत्र के तालाब आदि की देखरेख व मरम्मत में लगाते थे। समाज में श्रम भी पूंजी है और उस पूंजी को निजी हित के साथ सार्वजनिक हित में भी लगाया जाता था। श्रम के साथ-साथ पूंजी का अलग से प्रबंध किया जाता रहा है। इस पूंजी की जरूरत प्रायः ठंड के बाद, तालाब में पानी उतर जाने पर पड़ती है।

तब गरमी का मौसम सामने खड़ा है और यही सबसे अच्छा समय है तालाब में किसी बड़ी टूट-फूट पर ध्यान देने का। वर्ष की बारह पूर्णिमाओं में से ग्यारह पूर्णिमाओं को श्रमदान के लिए रखा जाता रहा है पर पूस माह की पूर्णों पर तालाब के लिए धान या पैसा एकत्र किये जाने की परम्परा रही

है। छत्तीसगढ़ में उस दिन छेरा-छेरा त्योहार मनाया जाता है। छेरा-छेरा में लोगों के दल निकलते हैं, घर-घर जाकर गीत गाते हैं और गृहस्थ से धान एकत्र करते हैं। धान की फसल कट कर घर आ चुकी होती है। हरेक घर अपने-अपने सामर्थ्य से धान का दान करता है। इस तरह जमा किया गया धान ग्रामकोष में रखा जाता है। इसी कोष से आने वाले दिनों में तालाब और अन्य सार्वजनिक स्थानों की मरम्मत और नये काम पूरे किये जाते हैं।

सार्वजनिक तालाबों में तो सबका श्रम और पूंजी लगती ही थी, निहायत निजी किस्म के तालाबों में भी सार्वजनिक स्पर्श आवश्यक माना जाता रहा है। तालाब बनने के बाद उस इलाके के सभी सार्वजनिक स्थलों से थोड़ी-थोड़ी मिट्टी लाकर तालाब में डालने का चलन आज भी मिलता है। छत्तीसगढ़ में तालाब बनते ही उसमें घुड़साल, हाथीखाना, बाजार, मंदिर, शमशान भूमि, वैश्यालय, अखाड़ों और विद्यालयों की मिट्टी डाली जाती थी। शायद आज ज्यादा पढ़-लिख जाने वाले अपने समाज से कट जाते हैं। लेकिन तब बड़े विद्या केन्द्रों से निकलने का अवसर तालाब बनवाने के प्रसंग में बदल जाता था। मधुबनी, दरभंगा क्षेत्र में यह परम्परा बहुत बाद तक चलती रही है।

तालाबों में प्राण हैं। प्राण प्रतिष्ठा का उत्सव बड़ी धूमधाम से होता था। उसी दिन उनका नाम रखा जाता था। कहीं-कहीं ताम्रपत्र या शिलालेख पर तालाब का पूरा विवरण उकेरा जाता था।

कहीं-कहीं तालाबों का पूरी विधि के साथ विवाह भी होता था। छत्तीसगढ़ में यह प्रथा आज भी जारी है। विवाह से पहले तालाब का उपयोग नहीं हो सकता। न तो उससे पानी निकालेंगे और न उसे पार करेंगे। विवाह में क्षेत्र के सभी लोग, सारा गांव पाल पर उमड़ आता है। आसपास के मंदिरों की मिट्टी

लायी जाती है, गंगा-जल आता है और इसी के साथ अन्य पांच या सात कुओं या तालाबों का जल मिलाकर विवाह पूरा होता है। कहीं-कहीं बनाने वाले अपने सामर्थ्य के हिसाब से दहेज तक का प्रबंध करते हैं।

विवाहोत्सव की स्मृति में भी तालाब पर स्तम्भ लगाया जाता है। बहुत बाद में जब तालाब की सफाई-खुदाई दुबारा होती है, तब भी उस घटना की याद में स्तम्भ लगाने की परम्परा रही है।

आज बड़े शहरों की परिभाषा में आबादी का हिसाब केन्द्र में है। पहले बड़े शहर या गांव की परिभाषा में उसके तालाबों की गिनती होती थी। कितनी आबादी का शहर या गांव है, इसके बदले पूछा जाता था कि कितने तालाबों का गांव है। छत्तीसगढ़ी में बड़े गांव के लिए कहावत है कि वहां 'छै आगर छै कोरी' यानी 6 बसी और 6 अधिक, 120 और 6, या 126 तालाब होने चाहिए। आज के बिलासपुर जिले के मल्हार क्षेत्र में, जो ईसा पूर्व बसाया गया था, पूरे 126 तालाब थे। उसी क्षेत्र में रतनपुर (दसवीं से बारहवीं शताब्दी), खरौदी (सातवीं से बारहवीं शताब्दी), रायपुर के आरंग और कुबरा और सरगुजा जिले के दीपाडीह गांव में आज आठ सौ, हजार बरस बाद भी सौ, कहीं-कहीं तो पूरे 126 तालाब गिने जा सकते हैं।

इन तालाबों के दीर्घ जीवन का एक ही रहस्य था—ममत्व। यह मेरा है, हमारा है। ऐसी मान्यता के बाद रख-रखाव जैसे शब्द छोटे लगने लगेंगे। भुजालिया के आठों अंग पानी में डूब सकें, इतना पानी ताल में रखना—ऐसा गीत गाने वाली, ऐसी कामना करने वाली स्त्रियां हैं, तो उनके पीछे ऐसा समाज भी रहा है जो अपने कर्तव्य से इस कामना को पूरा करने का वातावरण बनाता था। घरगैल, घरमैल यानी सब घरों में मेल से तालाब का काम होता था।

सबका मेल तीर्थ है। जो तीर्थ न जा सके, वे अपने यहां तालाब बनाकर ही पुण्य ले सकते हैं। तालाब बनाने वाला पुण्यात्मा है, महात्मा है। जो तालाब बचाये, उसकी भी उतनी ही मान्यता मानी गयी है। इस तरह तालाब एक तीर्थ है। यहां मेले लगते हैं। इन मेलों में जुटने वाला समाज तालाब को अपनी आंखों में, मन में बसा लेता है।

तालाब समाज के मन में रहा है। और कहीं-कहीं तो उसके तन में भी। बहुत से वनवासी समाज गुदने में तालाब, बावड़ी आज भी गुदवाते हैं। गुदनों के चिह्नों में पशु-पक्षी, फूल आदि के साथ-साथ सहरिया समाज में सीता बावड़ी और साधारण बावड़ी के चिह्न भी प्रचलित हैं। सहरिया शबरी को अपना पूर्वज मानते हैं। सीताजी से विशेष संबंध है। इसलिए सहरिया अपनी पिंडलियों पर सीता बावड़ी बहुत चाव से गुदवाते हैं। सीता बावड़ी में एक मुख्य आयत है। भीतर लहरें हैं। बीचों-बीच एक बिन्दु है जो जीवन का प्रतीक है। आयत के बाहर सीढ़ियां हैं और चारों कोनों पर फल हैं और फूल में है जीवन की सुगंध—इतनी सब बातें एक सरल, सरस रेखाचित्र में उतार पाना बहुत कठिन है। लेकिन गुदना गोदने वाले कलाकार और गुदवाने वाले स्त्री-पुरुष का मन तालाब, बावड़ी में इतना रमा रहा है कि आठ-दस रेखाएं, आठ-दस बिंदियां पूरे दृश्य को तन पर सहज ही उकेर देती हैं। यह प्रथा तमिलनाडु के दक्षिण आरकाट जिले के कुंराऊं समाज में भी है।

जिसके मन में, तन में तालाब रहा हो, वह तालाब को केवल पानी के एक गड्ढे की तरह नहीं देख सकेगा। उसके लिए तालाब एक जीवंत परम्परा है, परिवार है और उसके कई संबंध, संबंधी हैं। किस समय किसे याद करना है, ताकि तालाब बना रहे—इसकी भी उसे पूरी सुध है।

यदि समय पर पानी नहीं बरसे तो किस तक मनुहार पहुंचानी है? इन्द्र हैं वर्षा के देवता। पर सीधे उनको खटखटाना कठिन है, शायद ठीक भी नहीं। उनकी बेटी हैं काजल। काजल माता तक अपना संकट पहुंचाएं तो वे अपने पिता का ध्यान इस तरफ अच्छे से खींच सकेंगी। बोनी हो जाए और एक पखवाड़े तक पानी नहीं बरसे तो फिर काजल माता की पूजा होती है। पूरा गांव कांकड़बनी यानी गांव की सीमा पर लगे वन में तालाब तक पूज्यगीत गाते हुए एकत्र होता है। फिर दक्षिण दिशा की ओर मुंह कर सारा गांव काजल माता से पानी की याचना करता है—दक्षिण से ही पानी आता है।

काजल माता को पूजने से पहले कई स्थानों में पवन-परीक्षा भी की जाती है। यह आषाढ शुक्ल पूर्णिमा पर होती है। इन तालाबों पर मेला भरता है और वायु की गति देखकर पानी की भविष्यवाणी की जाती है। उस हिसाब से पानी समय पर गिर जाता है, न गिरे तो फिर काजल माता को बताना है।

तालाब लबालब भर जाना भी एक बड़ा उत्सव बन जाता है। समाज के लिए इससे बड़ा और कौन-सा प्रसंग होगा कि तालाब की अपरा चल निकलती है। भुज (कच्छ) के सबसे बड़े तालाब हमीरसर के घाट पर बनी हाथी की एक मूर्ति अपरा चलने की सूचक है। जब जल इस मूर्ति को छू लेता तो पूरे शहर में खबर फैल जाती थी। शहर तालाब के घाटों पर आ जाता। कम पानी का इलाका इस घटना को एक त्यौहार में बदल लेता। भुज के राजा घाट पर आते और पूरे शहर की उपस्थिति में तालाब की पूजा करते और पूरे भरे तालाब का आशीर्वाद लेकर लौटते। तालाब का पूरा भर जाना, सिर्फ एक घटना नहीं, आनन्द है, मंगल सूचक है, उत्सव है, महोत्सव है। यह प्रजा और राजा को घाट तक ले आता था।

इन्हीं दिनों देवता भी घाट पर आते हैं। जल झूलन त्यौहार में मंदिरों की चल मूर्ति तालाब तक लायी जाती है और वहां पूरे श्रृंगार के साथ उन्हें झूला झुलाया जाता है। भगवान भी सावन के झूलों की पेंग का आनन्द उठाते हैं।

कोई भी तालाब अकेला नहीं है। वह भरे जल परिवार का एक सदस्य है। उसमें सबका पानी है और उसका पानी सब में है—ऐसी मान्यता रखने वालों ने एक तालाब सचमुच ऐसा भी बना दिया था। जगन्नाथपुरी के मंदिर के पास बिन्दुसागर में देश भर के हर जल स्रोत का, नदियों और समुद्रों तक का पानी मिला है। दूर-दूर से, अलग-अलग दिशाओं से पुरी आने वाले भक्त अपने साथ अपने क्षेत्र का थोड़ा-सा पानी ले आते हैं और उसे बिन्दुसागर में अर्पित कर देते हैं।

देश की एकता की परीक्षा की इस घड़ी में बिन्दुसागर 'राष्ट्रीय एकता का सागर' कहला सकता है। बिन्दुसागर जुड़े भारत का प्रतीक है।

आने वाला समय कैसा होगा? यह बताना हमेशा कठिन रहा है। लेकिन इसका एक मापदंड तालाब भी था। नवरात्र के बाद जवारे विसर्जित होते हैं। राजस्थान में इस अवसर पर लोग तालाबों पर एकत्र होते और तब भोपा यानी पुजारीजी विसर्जन के बाद तालाब में पानी का स्तर देखकर आने वाले समय की भविष्यवाणी करते थे। बरसात तब तक बीत चुकी होती है। जितना पानी तालाब में जमा होना था, वह हो चुका है। अब इस स्थिति पर निर्भर है आने वाले समय की परिस्थितियां।

आज यह प्रथा मिट-सी गयी है। तालाब में जल-स्तर को देख आने वाले समय की भविष्यवाणी करनी हो, तो कई तालाबों पर खड़े भोपा शायद यही कहते कि बुरा समय आने वाला है। □

जेनेरिक औषधियां : जीवन का पोषण

□ शिला कौर

संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेंसियों ने विकासशील देशों में वहन कर पाने योग्य औषधियों के मामले में जेनेरिक दवाइयों की महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर दिया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की आवश्यक औषधियां एवं स्वास्थ्य उत्पाद विभाग एवं यूनिटेड ने 66वीं विश्व स्वास्थ्य असेंबली के दौरान एक बैठक आयोजित की थी। इसका शीर्षक था, “वर्तमान एवं भविष्य में उपचार तक बढ़ती पहुंच बढ़ाने में जेनेरिक औषधियों की भूमिका”। इसमें भाग लेने वालों का स्वागत करते हुए समन्वयक डॉ. लेंबिट रागो ने कहा कि जेनेरिक औषधियों की भविष्य में महत्वपूर्ण भूमिका है। यूरोपीय देशों में लागू बचत संबंधी कार्यवाही के चलते लागत में कमी की वजह से जेनेरिक पर निर्भरता और उनका उपयोग भी बढ़ेगा। उनका यह भी कहना था कि आने वाले समय में जेनेरिक औषधियां बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती रहेंगी।

अपनी शुरुआती टिप्पणी में यूनिटेड के उप कार्यकारी निदेशक डॉ. फिलिपी ड्युनेटोन ने बताया कि किस प्रकार यूनिटेड का व्यापार मॉडल जेनेरिक औषधी निर्माताओं पर स्वयं को केन्द्रित कर कम कीमत के माध्यम से जेनेरिक औषधियों तक पहुंच को आसान बनाकर उपचार को अधिक लोगों को पहुंचाता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि विश्व स्वास्थ्य संगठन कार्यक्रमों के बिना लोगों की क्षमता भी सीमित हो जायेगी। ये कार्यक्रम बहुत ही सहकार की भावना लिये हुए हैं। हमारे सामने आगे बहुत-सी चुनौतियां हैं। उदाहरण के लिए जेनेरिक फार्मूलों का निर्माण भी एक चुनौती है। उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा, आज हमारे पास अच्छा अवसर है कि हम भविष्य के कार्यक्रमों की रूपरेखा बना लें।

इसके बाद अनेक वक्ताओं ने सभी के

लिए स्वास्थ्य एवं गैर संक्रामक रोगों के संबंध में कार्ययोजना प्रस्तुत की। सभी का मत था कि इन दोनों ही परिस्थितियों से निपटने में अच्छी गुणवत्ता वाली अनिवार्य औषधियों की उपलब्धता और उन तक पहुंच होना जरूरी है। डॉ. रागो का कहना था कि औषधियों की गुणवत्ता आज भी एक बड़ी समस्या बनी हुई है। इस दौरान खराब गुणवत्ता की वजह से होने वाली असमय मौतों पर भी विस्तार से चर्चा हुई।

गौरतलब है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन विश्वभर में नियामकों के साथ मिलकर कार्य करता है। इसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लोगों को बेहतर गुणवत्ता वाली औषधियां उपलब्ध हो पायी हैं। उदाहरण के लिए सन् 2012 में दुनियाभर में करीब 80 लाख लोगों को रीट्रोवायरल उपचार मिला, इसमें करीब 65 लाख महिलाएं शामिल हैं, जिन्हें पहले से तयशुदा (प्रीक्वालिफाइड) दवाइयां प्राप्त हुईं।

अपनी अंतिम टिप्पणी में डॉ. लेंबिट ने कहा कि “पहले से तयशुदा दवाइयां जीवन की रक्षा करती हैं, लेकिन यह किसी प्रकार के राष्ट्रीय नियमन का हिस्सा न होकर गुणवत्ता वाली औषधियों तक पहुंच की प्रक्रिया हो सकती है। गरीब लोगों को खराब गुणवत्ता वाली औषधियों से निजात मिलना ही चाहिए। गरीब लोगों का भी अच्छी औषधियों पर अधिकार है। प्रीक्वालिफिकेशन एवं टीबी परियोजना के प्रबंधक रॉबर्ट माटिस ने एक स्वस्थ बाजार की स्थापना में इनके योगदान पर भी चर्चा की। वहीं पेटेंट के बढ़ते खतरे एवं एड्स की जेनेरिक औषधियों की गुणवत्ता वृद्धि पर भी विस्तार से चर्चा हुई। तंजानिया के खाद्य एवं औषधी निदेशक हैति बी. सिल्लो ने तंजानिया में औषधियों के नियमन की गंभीरता पर जोर दिया। इसमें नियमन की आवश्यकता,

प्रबंधन का ढांचा, मानव संसाधन क्षमता एवं संसाधन के साथ ही इस क्षेत्र के देशों के मध्य दवाइयों के आयात-निर्यात और बाजार के नियंत्रण जैसे विषयों को शामिल किया गया था।

ईएमपी के औषधी कार्यक्रम के स्वास्थ्य अधिकारी डॉ. रिचर्ड लाइंग ने इस तथ्य की ओर इशारा किया कि प्रत्येक देश की जेनेरिक औषधियों का अपना एक बाजार है और कोई भी दो देश एक जैसे नहीं हैं। पेटेंट की अवधि बीत जाने के बावजूद कुछ देशों में बड़ी मात्रा में ब्रांडेड दवाइयां बिकती रहती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि औषधियां भले ही जेनेरिक हों या ब्रांडेड उन्हें एक-सी गुणवत्ता वाली होना चाहिए। जेनेरिक दवाइयों को अपनाने की हर देश की अपनी क्षमता है। उदाहरण के लिए अमेरिका में जेनेरिक औषधियां 6 महीने के भीतर ब्रांडेड दवाइयों की 80% हिस्सेदारी अपनी तरफ कर लेती हैं। (जर्मनी में ब्रांड इतनी जल्दी नष्ट नहीं होते, वहां 4-5 वर्षों की अवधि में इनमें 15-16 प्रतिशत के मध्य कमी आती है एवं अनुमान है कि ऑस्ट्रिया में यह गिरावट 4-5 वर्षों में करीब 4-5 प्रतिशत ही होती है।)

अंत में यही कहा जा सकता है कि उच्च आय वाले देशों के अलावा औषधियों के मूल्य का भुगतान व्यक्ति को अपनी जेब से ही करना पड़ता है। ऐसे देश जहां स्वास्थ्य बीमा के अंतर्गत औषधियों को लाना संभव नहीं हो पाया है वहां जेनेरिक औषधी नीतियां महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगी!

लाइंग का कहना है, “जहां लोगों को अपनी जेब से भुगतान करना है वहां जेनेरिक औषधियां किसी व्यक्तिगत मरीज द्वारा औषधियों पर किये जाने वाले खर्च में 60% तक की कमी ला सकती है और यही मृत्यु, गरीबी या जीवन के बीच अंतर भी ला सकता है।” □

सड़कों की अवैज्ञानिक प्रौद्योगिकी : निस्संदेह सड़कें पहाड़ की जीवन-रेखा हैं, क्योंकि यहां पर न तो रेलवे लाइन है, न आम आदमी हवाई सेवा का उपयोग कर सकता है। ले-देकर सड़क ही परिवहन का साधन है; किन्तु सड़क-निर्माण की पुरानी तकनीकी तब इतनी खराब नहीं थी, जब मानव श्रम से सड़क बनती थी। आज जे. सी. बी., डायनामाइट और अन्य भारी मशीनें आ गई हैं, जो पल भर में धरती मां को लहलुहान कर भारी मलबा उधेड़ लेती हैं। सच्चाई से शोध कर देखें तो पता लगेगा की सड़कों के कारण पिछले कुछ दशकों से लाखों नहीं, करोड़ों टन मलबा (मिट्टी, पत्थर, रोड़ी) नदियों, गदरों, जंगलों और खेतों में डाला गया है, जिसके कारण तबाही हुई है।

एक कि. मी. सड़क बनाने के लिए लगभग 30 लाख रुपये खर्च होते हैं, फिर भी सड़क बनाने का तरीका देखिए—सड़क के एलाइमेंट के लिए किसी भूगर्भ वैज्ञानिक व पर्यावरण के जानकार की मदद नहीं ली जाती है, इंजीनियर, ठेकेदार और राजनेता विकास के नाम पर सब जगह हावी रहते हैं। सड़क विकास है या सुविधा, यह भी समझने वाली बात है। सड़क बनाने के दो महकमे मुख्य हैं लोक निर्माण विभाग व बी. आर. ओ.। लो. नि. वि. तो भ्रष्टाचार की जननी है, यहां निर्माण कार्यों में 40-50 प्रतिशत कमीशन विभाग के अभियंता ठेकेदारों से वसूलते हैं। अब पूंजी लगाने वाला ठेकेदार कितना कमायेगा और फिर कितना काम होगा, इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। बीआरओ पहले ईमानदार संगठन था किन्तु अब उनका

सीमेंट भी सड़कों में बिकता है, कमीशनखोरी वहां भी आ गयी है। अब आपदा के भारी भरकम पैसे के आने के बाद जो सड़कें बनेंगी, इसका मोटा फायदा आखिर किसका होगा? अन्दाजा लगा सकते हैं! कहीं भी भ्रष्टाचार रोकने और गुणवत्ता की बात नहीं हो रही है।

सड़क निर्माण की खतरनाक/असफल प्रौद्योगिकी ने ही पहाड़ की जीवन-रेखा सड़क को काल बना दिया है। सैकड़ों सड़कें ध्वस्त पड़ी हैं या एक-दूसरे के ऊपर उनका मलबा पड़ा है। आपदा के समय एक लाख से अधिक लोगों को जगह-जगह इंजीनियरों की बनायी सड़कों ने ही तो फँसाया है, और यहां के ग्रामीण तो आज भी परेशानी में हैं। यदि सड़कों का निर्माण गुणवत्ता से होता और उनका ढाल, नालियों व नारदाने ठीक होते तो इतनी सड़कें ध्वस्त नहीं होतीं। चाहे हाइवे हो या आम सड़क, कहीं भी नालियों व नारदानों की देखभाल नहीं होती है। सब जगह नालियां व नारदानें बंद रहते हैं। फिर भी कहीं से एक शब्द भी निर्माणकर्ताओं पर नहीं उठा, दण्डित करने की बात तो कोसों दूर है; जबकि लाखों रुपये का रोड टैक्स वाहनों से प्रतिदिन वसूला जाता है।

सड़कें बनाने के लिए पहाड़ों को काट कर मलबा सीधे नीचे लुढ़काया जाता है, मलबा खेत, खलिहान, जंगल व नदी आदि जहां भी पड़े, इसकी किसी को परवाह नहीं होती। ऊपर से भारी जे.सी.बी. के ब्लैड धरती को खूब उधेड़ देते हैं, जहां कठोर चट्टानें हैं, वहां दना-दन डायनामाइट के धमाके करते हैं और कुछ माह में ही सड़क तैयार हो जाती है। डायनामाइट के धमाकों से पहाड़ों

में दरारें पड़ जाती हैं। कुछ दिन बाद बारिश होते ही इन दरारों में पानी रिसता है, और ऊपर से भारी भू-स्खलन होने लगता है। नीचे डाला गया मलबा भी बहकर खिसकने लगता है यह मलबा भूस्खलन का बड़ा रूप लेकर नदियों में बाढ़ का रूप लेता है और तबाही होती है। एक नई कहावत बनी है— 'सड़क कच्ची—कमीशन और नौकरी पक्की'—हर वर्ष मरम्मत का पैसा और कमीशन मिलता रहेगा।

तबाही को रोकने के लिए जरूरी है कि सड़क-निर्माण की तकनीकी बदली जाए। सड़क-कटाव से जितना मलबा निकलता है, उसका उचित स्थान पर निस्तारण किया जाय। धरती के काटे गये हिस्से पर ऊपर व नीचे से मजबूत पुस्ते/दीवारें बनाये जाएं, वहां पर घास-झाड़ियां व वृक्षारोपण साथ-साथ किया जाय। वे समस्त तरीके अपनाये जाएं जिससे घायल धरती मां के घाव भर सकें। धरती के साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो एक जीवधारी के साथ होता है—उदाहरण के लिए किसी मानव की सर्जरी करने पर डॉक्टर उसके चीरे गये भाग पर टांके लगाकर मरहम पट्टी और दवा लगाते हैं। धरती का इलाज भी हम उसी तरह करेंगे तो 90 प्रतिशत से अधिक सड़कों को भूस्खलन की समस्या से बचा सकते हैं। कठोर चट्टानें काटने के लिए नई तकनीकी की कटर मशीनों से पहाड़ काटे जा सकते हैं और जरूरत पड़ने पर छोटी-छोटी टनल ड्रिल विधि से बनाकर सड़क-निर्माण की नई तकनीकी विकसित की जा सकती है। इसके साथ ही धरती के कटाव करने की अपेक्षा पुल भी ज्यादा मात्रा में बनाये जा सकते हैं।

नारदाने नालियों व सफाई को व्यवस्थित रखने एवं छोटे-बड़े मलबे को हटाने के लिए प्रति आठ-दस कि. मी. पर सड़क सुरक्षा दस्ता बारह महीने तैनात रहना चाहिए। इस दस्ते की मुख्य जिम्मेदारी सड़क की सफाई, नालियों और नारदाने का सुधार करना होना चाहिए। सड़क-निर्माण व रख-रखाव के ठोस मानक होने चाहिए। मानक का उल्लंघन करने वाले अधिकारियों व ठेकेदारों को दण्डित किया जाना चाहिए।

बांध/जल-विद्युत परियोजनाएं महाकाल क्यों? : हिमालय कितना संवेदनशील है, यह बात भूगर्भ-वैज्ञानिकों ने काफी साफ की है। दर्जनों इस तरह के अध्ययन मौजूद हैं। इसके बावजूद भी उत्तराखण्ड में 558 से अधिक बांध/बैराज और छोटी-बड़ी जल विद्युत परियोजनाओं पर काम चल रहा है। अनेकों योजनाएं बन चुकी हैं, डेढ़ दर्जन से अधिक परियोजनाएं निर्माणकर्ताओं की गलती से हाल में आई आपदा के कारण नष्ट भी हो गई हैं।

केदारनाथ और केदार घाटी हाल ही की आपदा के कारण सबसे ज्यादा चर्चा में है। सबसे ऊंचाई से तीखे ढाल में बहने वाली मन्दाकिनी नदी कई नदियों की तरह कम्पनियों के कब्जे में है। रामबाड़ा जो जिन्दा लाशों की दुनिया का सबसे बड़ा कब्रिस्तान बन गया है, यहां पर लैंको नामक कम्पनी 76 मेगावाट की रामबाड़ा जल विद्युत परियोजना चला रही थी और इसी के समीप सीतापुर में कम्पनी की दूसरी परियोजना फाटा-ब्यूंग का बैराज बन चुका था, और फाटा तक 8-10 कि. मी. की सुरंग के पावर हाउस आदि बन गये थे; आगे ब्यूंग तक लगभग 18 कि. मी. सुरंग बन रही थी। शेरसी व खड़िया सहित दर्जनों गांवों में यह तबाही देखी जा सकती है, इन गांवों के नीचे से

टनल गुजरती है। इस परियोजना की हवाई दूरी केदारनाथ से 1.5 (डेढ़ कि.मी.) के लगभग है। पहाड़ियां आपस में जुड़ी हैं। दर्जनों गांवों के स्थानीय लोग बताते हैं कि टनल निर्माण के लिए कम्पनी ने भारी से भारी डायनामाइट के धमाके किये थे। फलस्वरूप उनके घर क्षतिग्रस्त हुए। जब धमाके होते थे, तो पूरे पहाड़ हिलते थे। जब केदारनाथ के आसपास की पहाड़ियों पर बसे गांव हिले हैं, तो यह भी निश्चित है कि केदारनाथ के समीप चौराबाड़ी ताल व ग्लेशियर भी इन धमाकों से हिला होगा। जिसके फलस्वरूप यहां ज्यादा तबाही हुई। इसकी उच्चस्तरीय भूगर्भीय जांच करायी जा सकती है।

16-17 जून, 2013 को केदारनाथ से जब मंदाकिनी में बाढ़ आयी, तो सीतापुर में लैंको कम्पनी के बांध, बैराज में बाढ़ का पानी रुक गया। लाखों-करोड़ों क्यूसेक पानी उसमें जमा हुआ; टनल में भी बाढ़ का पानी घुसा, लेकिन बहती गाड़ियों व मलबे से टनल बंद हो गयी और एक बड़ी झील सोनप्रयाग तक बन गयी। फलस्वरूप सीतापुर व सोनप्रयाग की जीती-जागती बस्ती, दुकानें, होटल व आवासीय घर भी डूब गये और कुछ देर बाद लैंको का बांध बैराज भी टूट गया। इससे उत्पन्न बाढ़ में सड़कों में खड़े सैकड़ों वाहन बह गये। सोनप्रयाग, सीतापुर, चन्द्रापुरी, विजय नगर, अगस्त्यमुनि और आगे श्रीनगर तक भारी तबाही हुई। कुंड के समीप एल एण्ड टी कम्पनी की सिंगोली-भटवाड़ी परियोजना के कारण मंदाकिनी घाटी में और तबाही हुई। आँखों देखा सच यह है कि बांध निर्माण कम्पनियों ने भारी डायनामाइट के विस्फोट तो किये ही थे, साथ ही सुरंग व अन्य निर्माण का लाखों टन मलबा भी नदी में डाला था। जिसने आग में घी का काम किया।

अलकनंदा की सहायक विष्णुगंगा पर जे. पी. कम्पनी की विष्णुप्रयाग योजना का विरोध आरम्भ से था, फिर भी यह योजना बन गयी। इस कम्पनी ने अधिक बिजली के लालच में अपने बांध बैराज में पहले बाढ़ का पानी भरने दिया और क्षमता से अधिक पानी जमा होने पर अचानक बैराज भी टूट गया, इससे उत्पन्न बाढ़ ने प्रलय का रूप ले लिया। फलस्वरूप हेमकुंड गोविंद घाट, लामबगड़, विष्णुप्रयाग व आगे श्रीनगर तक भारी तबाही हुई। श्रीनगर की बस्तियों व वहां सरकारी संस्थानों को डुबाने में जी. बी. के. कम्पनी की श्रीनगर जल विद्युत परियोजना इसी तरह सीधे-सीधे जिम्मेदार है, कोई भी इस त्रासदी को देख सकता है।

राज्य में नदी घाटियों और उच्च हिमालय में तब से ज्यादा संकट आया है, जब से सुरंग आधारित जल विद्युत परियोजनाओं की बाढ़ आयी है। एक अनुमान के अनुसार यहां पर प्रस्तावित बांधों की सुरंगों की लम्बाई 1800 कि. मी. तक बैठती है और 225 कि. मी. सुरंगें अब तक खोदी जा चुकी हैं। अनुमान लगाइए इनसे कितना मलबा निकला होगा। वह सब नदियों में ही डाला गया है। आने वाले समय में भारी बारिश, भू-स्खलन व भूकम्प आदि की घटनाएं बढ़ेंगी। आपदा प्रबंधन के भरोसे रहना और अधिक विनाश को न्यौता देना है। वर्तमान ढांचे के भरोसे रहना खतरनाक है; अब आपदा की पूर्व सूचना-प्रणाली नये ढंग से विकसित करनी होगी, बांधों का आपदा प्रबंधन तो हमारे सामने फेल हो गया है। इसलिए जरूरी है आपदा बुलाने और आपदा बढ़ाने वाले कार्यों को ही रोका जाय।

आज आपदा के कारण भारत सरकार का पर्यावरण मंत्रालय थोड़ी गम्भीरता से हिमालय के पारिस्थितिकीय तंत्र के बारे में विचार करने→

क्षमा तथा न्याय

□ जागृति राही

शांति के लिए सत्याग्रह व अहिंसा की प्रक्रिया में विश्वास रखने वालों को व्यक्ति के अंदर की अच्छाई (बुरे-से-बुरे व्यक्ति में भी) पर यकीन रहता है; उन्हें अंतरात्मा को जगा देने के लिए खुद को कष्ट देना सही लगता है, बजाय किसी दूसरे को सजा देने के। शोषण करने वाला शर्मिन्दा हो जाएगा, सच की ताकत के आगे अंततः उसे झुकना होगा, सत्य परेशान हो सकता है, पराजित नहीं। गांधीजी ने उससे एक कदम आगे जाकर सत्य को ही ईश्वर कहा।

वैसे तो ये सब बड़ी सकारात्मक और अच्छी बातें लगती हैं लेकिन क्या ये इतनी ही सरल हैं? विशेष रूप से समाज के दलित-शोषित अल्पसंख्यक तबके और देश की आधी आबादी महिलाओं के साथ हर स्तर पर होने वाले अन्याय और हिंसा के संदर्भ में। आज-कल बड़े जोर-शोर से जिन दो बातों की चर्चा है, वह है देश की राजनीति में साम्प्रदायिकता का उभार और महिलाओं के साथ होने वाला अनैतिक व्यवहार या यौन-शोषण। इन दोनों

→ लगा है। इसे और गहराई से आगे बढ़ाने और कठोर कदम उठाने की जरूरत है, क्यों कि दर्जनों जल विद्युत निर्माता कम्पनियों ऐसी हैं जिन्होंने पर्यावरण मंत्रालय के आदेशों का कहीं पालन नहीं किया है। श्रीनगर विद्युत परियोजना इसका उदाहरण है। फिर भी उन पर कोई कार्यवाही क्यों नहीं हुई है? दुखद बात यह है कि राज्य सरकार पर माफिया का दबाव बहुत भारी है। विकास के नाम पर माफिया तंत्र यहां के संसाधनों की लूट में लगा है। भारत सरकार ने जब गोमुख से उत्तरकाशी तक भागीरथी घाटी को ईको सेन्सिटिव जोन घोषित किया, तो सारे राजनीतिक

का ही संबंध व्यक्ति के विश्वास और आस्था से है, और दोनों ही मामलों में देश के तमाम बड़े राजनेताओं, पत्रकारों और जज जैसे समाज के प्रतिष्ठित पदों और पेशों से जुड़े लोग पकड़े जा रहे हैं, जिनपर समाज को नेतृत्व और दिशा देने का दायित्व होता है।

क्या इस तरह के व्यवहार के लिए दोषी लोगों को उनके द्वारा सताये गये लोगों या महिलाओं द्वारा माफ किया जा सकता है? क्या यह उनका व्यक्तिगत मामला है? जिस देश में आम लोगों में कानून की जानकारी न के बराबर हो, वहां यह होना ही था। लेकिन विगत कुछ वर्षों में तमाम नागरिक संगठनों और जन आंदोलनों के दबाव में कुछ कानून सरकार को बनाने पड़े—समाज में कमजोर या अंतिम व्यक्ति का हित कैसे सुरक्षित रहेगा? उसे ताकतवर से कौन बचाएगा? आज तो समाज 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की तर्ज पर संचालित हो रहा है; जो ताकतवर हैं वे संगठित हैं। जो सत्ता में हैं उनके सामने सारे कानून बेकार हैं,

दल यहां तक कि राज्य सरकार भी इसके विरोध में आ गयी। इससे साफ पता चलता है कि हिमालय की नदियां, वन एवं खनिज सम्पदा पर माफिया तंत्र कितना भारी है। इसलिए निर्माता कम्पनियों कानून की धज्जियां उड़ा रही हैं।

बांध एवं जल विद्युत परियोजनाओं के लिए पहाड़ की छोटी-बड़ी नदियां बड़ी कम्पनियों के हाथ बेची जा रही हैं, जिसके फलस्वरूप यहां के मूल निवासियों के जिन्दा रहने के प्राकृतिक और मौलिक अधिकार छीने जा रहे हैं। जहां-जहां परियोजनाएं बनी हैं, वहां के लोगों को आज बड़े संकट का सामना करना

यह मान लिया गया था। ऐसे में लोगों में खासकर अल्पसंख्यक और महिलाओं ने तो शिकायतें करना ही बंद कर दिया था और आज जब बड़े-बड़े नामों पर अंगुलियां उठ रही हैं और नये कानून की जद में धर्म के ठेकेदार, नेता, पत्रकार, न्यायाधिकारी तक पकड़े जा रहे हैं, तो यह एक आश्चर्यचकित करने वाला दौर लगता है। क्या वाकई देश की व्यवस्थाओं में संस्थाओं की जकड़न को, ताकतवरों के चंगुल से कुछ आजादी हासिल हो रही है या फिर यह इस आंदोलन का प्रभाव है, जो पिछले वर्ष दिल्ली में हुई घटना के बाद देश की सड़कों पर हुआ। पढ़ा-लिखा-शहरी मध्यमवर्गीय युवा और महिला इस आंदोलन में शामिल रहे; क्या गांवों तक में आंधी पहुंची है? चर्चाओं में जल-जंगल-जमीन, साम्प्रदायिकता, महिला हिंसा मुद्दा बना है, पर कहा तो यह भी जा रहा है—हिंसा की घटनाएं रुक नहीं रहीं, लोगों में खौफ अब भी नहीं है, तो क्या यह हमारे समाज की विफलता नहीं है? कानून का खौफ जरूरी

पड़ रहा है। टिहरी बांध से प्रभावित कई गांवों का अब तक सही पुनर्वास नहीं हो पाया है; और जो गांव झील के किनारे हैं, वे एक जमाने के काले पानी की सजा भुगत कर परेशानी में जीवन काट रहे हैं। इसलिए जरूरी है कि नदियों को बहने दिया जाय, उनका प्राकृतिक स्वरूप कायम रहे, उससे किसी प्रकार की नाजायज छेड़छाड़ न की जाए। यदि नदी के सीधे प्रवाह से बिजली बन सकती है, तो जन समुदाय द्वारा ही सहकारिता के आधार पर परियोजनाएं बनानी चाहिए। या फिर सरकार अपने संसाधनों से इन योजनाओं का निर्माण करे। □

नहीं है, कानून का राज कायम करने के लिए पीड़ित को न्याय मिलना जरूरी है। लोग कहते हैं कि मानसिकता में बदलाव लाये बिना हिंसा नहीं रुकेगी, तो कैसे कब और कहां-कहां होगा मानसिकता में बदलाव? इनसान के अंदर शैतान और भगवान दोनों होते हैं, हमारे धर्म कहते हैं। नैतिकता और इनसानियत के मूल्यों का पाठ पढ़ाकर बचपन से हमें एक सामाजिक प्राणी बनाया जाता है ताकि हम खुद के साथ-साथ दूसरों के प्रति भी संवेदनशील बन सकें। क्या हमारे राज्य, परिवार, हमारी न्याय व शिक्षा व्यवस्था काम कर पा रहे हैं? निश्चय ही यह व्यवस्था काम नहीं कर पा रही है, तो यह जो समाज-निर्माण की पहली सीढ़ी है, हम तो वहीं पर फेल हो चुके हैं। धर्मों, जातियों, जमीन के झगड़ों, राजनैतिक हितों, गांवों में राजनीतियों द्वारा प्रायोजित साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार क्या भुला पायेंगे अपने साथ बीते भयानक हादसों को? क्या हजारों औरतें अपने मान-सम्मान और मन पर लगे घावों, विश्वासघात के दंश को भुला पायेंगी? जो हादसे जिन्दगी के आधार हिला दें, लोगों के विश्वास को तोड़ दें, उन्हें वे कैसे और किस दम पर भुला पायेंगे? क्या इन्हें न्याय दिलाने वाली व्यवस्था इतनी संवेदनशील रह पायी है। सालों चलने वाली महँगी व्यवस्था देने वाली कानूनी प्रक्रिया और उसके बाद दी जाने वाली सजा क्या न्याय की श्रेणी में आते हैं; इस देश में सजा तो सुधार के लिए दी जाती है तो फिर क्या ऐसे मुजरिम सुधरते हैं? जिनपर ये हादसे गुजरे हैं, उन्हें अपनी जिन्दगी दुबारा शुरू करने में हमारी न्याय और सामाजिक व्यवस्थाएं कितनी मददगार होती हैं? क्या यह मुआवजा भी राजनेताओं की मर्जी और दया पर होना चाहिए? एक लोकतांत्रिक देश में ऐसा नहीं होना चाहिए।

1-15 मार्च, 2014

आजाद भारत का इतिहास लगातार किसी एक समुदाय को निशाना बनाकर की गयी हिंसा और साम्प्रदायिक हमलों का गवाह रहा है। इस तरह की हिंसा से न केवल जान और माल का नुकसान होता है, लोग अपने घर और जमीन से उजड़ते हैं, बल्कि संविधान द्वारा सभी भारतीयों को दिये गये बराबरी एवं जीवन के अधिकार का भी हनन होता है। यही नहीं, इस तरह की हिंसा हमारी साझा संस्कृति को तहस-नहस कर समुदायों में एक-दूसरे से डर, तनाव और नफरत को भी बढ़ावा देती है। यह प्रवृत्ति साम्प्रदायिक एकता के ताने-बाने को नष्ट करने पर आमादा है और एक राष्ट्र के रूप में हमारी पहचान पर कलंक है। विविध धर्मों, संस्कृतियों, जाति समूहों को जोड़ने वाली देश की साझा संस्कृति की ऐतिहासिक विरासत को छिन्न-भिन्न करने के लिए सामाजिक पूर्वाग्रहों एवं लक्षित हिंसा के जरिये साम्प्रदायिक, भाषायी एवं जातिवादी राजनीति को बढ़ाने वाली ताकतें सारे समाज को अपने आगोश में ले लेने के लिए आक्रामक रूप से सक्रिय हैं। सामाजिक पूर्वाग्रहों से लड़ाई तो एक लम्बे सामाजिक आंदोलन के मार्फत ही हो सकती है, लेकिन क्या सरकारी मशीनरी को पक्षपातहीन और जवाबदेह बनाया जा सका है? क्या कोई ऐसा रास्ता नहीं हो सकता कि पीड़ित के लिए इंसाफ की डगर आसान बनायी जा सके और उनकी उजड़ी हुई जिन्दगी को तत्काल भौतिक रूप से बसाया जा सके? इन्हीं सवालियों का जवाब देने की कोशिश है 'साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा (न्याय और पुनर्वास पहुँच) विधेयक 2011'।

यह विधेयक बनाने के बाद इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। इस पर बहस हो और यह कानून बन सके, इसके लिए विभिन्न राजनीतिक दलों में राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी है। इन्हीं परिस्थितियों में एक

राष्ट्रीय अभियान 'इन्साफ सबके लिए' शुरू किया गया है, ताकि विधेयक को संसद में रखा जाए और इसपर देश में चर्चा हो सके। सभी सांसदों को एसएमएस व ई-मेल भेजने, पोस्टकार्ड अभियान, हस्ताक्षर अभियान, ऑनलाइन हस्ताक्षर अभियान जैसे कार्यक्रमों का संचालन किया गया। देश के विभिन्न शहरों, कस्बों में सेमिनार-गोष्ठी के माध्यम से अभियान जारी है। इसी क्रम में वाराणसी में 22 दिसंबर, 2013 को सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में तीस्ता शीतलवाड़, वी.एन. राय (पूर्व डीजीपी, उत्तर प्रदेश) आदि ने सम्बोधित किया। सम्मेलन 350 की संख्या में विभिन्न वर्गों के लोगों की भागीदारी रही। अभियान के अंतर्गत 30 जनवरी, 2014 को गांधी शहादत के दिन को बड़े पैमाने पर मनाने का निर्णय लिया गया। □

शोक-संवेदना

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी द्वारा संचालित सर्वोदय बुक स्टाल, मुम्बई सीएसटी के व्यवस्थापक भाई सुरेश भेरवानी का 8 फरवरी, 2014 को निधन हो गया। यह दुःखद समाचार उनके पुत्र श्री अमित भेरवानी द्वारा दूरभाष पर 10 फरवरी, 2014 को वाराणसी में प्राप्त हुआ।

भाई सुरेश भेरवानी गांधी-विचार के प्रचार-प्रसार तथा गोरक्षा अभियान के कार्य में लम्बे समय से सक्रिय रहे। आप काफी दिनों से बीमार चल रहे थे।

11 फरवरी को 10.10 बजे सर्वधर्म प्रार्थना के उपरांत दो मिनट की मौन श्रद्धांजलि अर्पित कर परमेश्वर से प्रार्थना की गयी कि दिवंगत भाई सुरेश भेरवानी की आत्मा को शांति एवं परिवारजनों को वेदना-सहन की शक्ति दे।-स.ज. प्रतिनिधि

आर्थिक वृद्धि दर विकास का पैमाना नहीं

□ जयन्त वर्मा

भारत के संविधान के भाग-चार में शासन के मूलभूत तत्व लिपिबद्ध हैं और राज्य को यह निर्देश है कि विधि बनाकर इन तत्वों को लागू किया जाय। अनुच्छेद-38(2) में स्पष्ट लिखा है कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों को समूहों के बीच प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करना राज्य का कर्तव्य है। वर्ष 1950 में भारत का संविधान लागू होने के समय देश की लगभग 80 फीसदी आबादी कृषि और सहायक व्यवसायों में संलग्न थी। इनकी आजीविका का मुख्य स्रोत प्राकृतिक संसाधन अर्थात् जल, जंगल और जमीन थे। उपनिवेश काल में ब्रिटिश हुकूमत ने जल, जंगल और जमीन को मनमाने तौर पर हड़प लेने के लिए असंख्य कानून बनाए। सन् 1894 का भूमि अधिग्रहण कानून, सन् 1927 का भारतीय वन कानून आदि ऐसे ही कुछ कानून हैं।

ब्रिटिश हुकूमत से समझौते के तहत जब भारतवासियों को सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो उपनिवेशकालीन सभी कानूनों को कायम रखा गया। संविधान के सातवें संशोधन में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को यह अधिकार दिया गया था कि वे एक वर्ष की अवधि में ऐसे सभी कानूनों की समीक्षा करेंगे, जो ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किए गए थे। यदि वे संविधान की प्रस्तावना, भाग-तीन और चार के प्रतिकूल पाए जाते हैं तो उन्हें संशोधित या निरस्त करने का भी उन्हें पूर्ण अधिकार था। दुर्भाग्य से तत्कालीन शासक वर्ग ने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया। इसकी वजह शायद यह थी कि उन्हें ब्रिटिश कालीन सभी कानून अपने वर्गहित में दिखे होंगे। इसके बाद यह मान लिया गया कि

उपनिवेशकालीन सभी कानून संविधान सम्मत हैं।

संविधान में विकास को कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। वर्ष 1990 के बाद भू-मण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियां अपनाई गयीं। सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि को विकास का पैमाना मान लिया गया। इसका अर्थ यह था कि जल, जंगल और जमीन पर आश्रित लोगों से ये संसाधन छीन कर कम्पनियों के हवाले कर दिए जाएं ताकि वे उनका भरपूर दोहन कर देश को विकसित बना दें।

योजना आयोग का अनुमान है कि आजादी के बाद निजी और सार्वजनिक क्षेत्र की विभिन्न परियोजनाओं के लिए भूमि के अधिग्रहण से लगभग 6 करोड़ लोग विस्थापित हो चुके हैं। सर्वाधिक रोजगार देने वाले कृषि क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश घटा देने और खाद्यान्न के समर्थन मूल्य में निरंतर गिरावट के कारण खेती घाटे का सौदा बन गई। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार पिछले 17 वर्षों में 3 लाख से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं। एक ताजा अध्ययन के अनुसार प्रतिदिन दो हजार किसान खेती छोड़ रहे हैं। लोगों का गांव से शहर की ओर पलायन बढ़ता जा रहा है। संसद और विधानसभाओं में इस समस्या को लेकर चुप्पी दिखती है। सभी राजनीतिक दल यह मान चुके हैं कि खेती-किसानी का काम श्रम केन्द्रित न होकर पूंजी केन्द्रित बनाया जाय। इसके लिए छोटे और सीमांत किसानों से खेती की भूमि हड़प कर कार्पोरेट घरानों को सौंपने की ओर तेजी से कदम उठाए जा रहे हैं। एन. डी. ए. की सरकार ने वर्ष 2000 में योजना आयोग का दृष्टिपत्र तैयार किया था, जिसके अनुसार

वर्ष 2020 में भारत की सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान घटाकर मात्र 6 प्रतिशत कर देने की योजना है। यू. पी.ए. की सरकार और उसमें शामिल सभी राजनीतिक दलों का भी यही दृष्टिपत्र है।

संविधान के अनुच्छेद 39(क) में राज्य को निर्देश है कि वह अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो। अनुच्छेद-39(ख) में राज्य को ऐसे कानून बनाने का निर्देश है कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटे ताकि सामूहिक हित सर्वोत्तम रूप से सध सकें। यह भी सुनिश्चित करने का निर्देश है कि धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो। आर्थिक भूमण्डलीकरण की नीतियों के फलस्वरूप उपरोक्त सभी निर्देशों की धज्जियां उड़ाने वाले परिणाम सामने आ रहे हैं। संविधान के भाग-चार के उल्लंघन में चलाई जा रही आर्थिक नीतियां प्रमाणित करती हैं कि संविधान के प्रति आस्था की शपथ लेकर विधायिका और कार्यपालिका में पदस्थ पदाधिकारी जनता के साथ विश्वासघात कर रहे हैं। विकास के अधिकार के घोषणापत्र (1986) में विकास के तीन मानक बताए गए हैं। प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण, स्वनिर्धारण और विकास के प्रतिफल में भागीदारी। भूमि अधिग्रहण संशोधन अधिनियम में इन तीनों मानकों का समावेश नहीं किया जाना विकास पीढ़ियों के मानवाधिकारों का खुला उल्लंघन है।

जुलाई, 2013 में ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जारी राष्ट्रीय भूमि सुधार नीति के प्रारूप में यह खुलासा किया गया है कि

ग्रामीण भारत में खेती की जमीन खेतिहर समाज के नियंत्रण से निकलती जा रही है। भारत के एक तिहाई परिवार भूमिहीन हैं। इतने ही परिवार भूमिहीनता के करीब पहुंच चुके हैं। अगले 20 प्रतिशत परिवारों के पास 1 हेक्टेयर से भी कम भूमि है। इस प्रकार भारत की 60 फीसदी आबादी का देश की कुल भूमि के 5 प्रतिशत पर अधिकार है जबकि 10 प्रतिशत जनसंख्या का 55 फीसदी जमीन पर नियंत्रण है।

यह भी स्पष्ट हो चुका है कि आर्थिक वृद्धि दर की टपकन का लाभ निर्धनों तक नहीं पहुंच रहा है। समाज में गरीबी और अमीरी के बीच खाई तेज गति से बढ़ रही है। ऐसी दशा में आर्थिक वृद्धि दर विकास का पैमाना नहीं बल्कि लूट का हथियार बन गयी है। विकास की परियोजनाओं से उजड़ने वालों का यह सवाल अब बहुत महत्वपूर्ण हो गया है कि “किसकी कीमत पर किसका विकास...।”

यह सभी जानते हैं कि पांचवीं अनुसूची वाले जनजातीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधन भरपूर हैं। वहां के खनिज, जल, वन और भूमि पर कापेरिट घरानों की नजर है, येन केन प्रकारेण वे इसे मिट्टी-मोल हासिल करना चाहते हैं। पंचायतों के अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार के कानून ‘पेसा’ में ग्रामसभा की सहमति के बिना लोगों की बेदखली और भूमि का अधिग्रहण प्रतिबंधित है। समता और नियामगिरी के प्रकरणों में उच्चतम न्यायालय ने पांचवीं अनुसूची वाले क्षेत्रों में कापेरिट घरानों को प्राकृतिक संसाधन सौंपने के सरकारी फैसलों को असंवैधानिक घोषित किया है। इसके बावजूद शासक वर्ग द्वारा जगह-जगह एम. ओ. यू. के माध्यम से जनजातीय क्षेत्रों के संसाधन कापेरिट घरानों को सौंपने का सिलसिला जारी है।

1-15 मार्च, 2014

काव्य-धरोहर

सत्य कभी पीछे मुड़कर नहीं देखता

—खलील जिब्रान

आपके बच्चे वास्तव में आपके बच्चे नहीं हैं
वे जीवन की स्वयं के प्रति अभीप्सा के पुत्र और पुत्रियाँ हैं
वे आपसे हीकर आए हैं मगर आपसे नहीं
आप उन्हें अपना स्नेह तो दे सकते हैं मगर विचार नहीं
क्योंकि उनके अपने विचार हैं
आप उनकी देह को घर दे सकते हैं, मगर आत्मा को नहीं
क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल के घर में निवास करती है
जहाँ तक आप नहीं पहुँच सकते, सपने में भी नहीं।

आप उनके जैसा बनने का प्रयास तो कर सकते हैं
लेकिन उन्हें अपने जैसा बनाने का प्रयास न करें
क्योंकि समय कभी पीछे मुड़कर नहीं देखता
वह बीते कल के साथ नहीं ठहरता;

आप वे धनुष हैं जिनसे आपके बच्चे,
जो जीवंत तीर हैं छोड़े जाते हैं श्विष्य की और
धनुर्धारी अन्त के पथ पर निशाना देख पाता है
और वह मीड़ता-कसता है आपको अपनी शक्ति से
ताकि उसके तीर जा सकें तेजी से
और दूर तक।

अपने इस धनुषरूप को
धनुर्धारी के हाथों में
उल्लास हेतु कसा रहने दी
क्योंकि जैसे वह प्यार करता है उन उड़ते तीरों को
उसी प्रकार वह उस धनुष को भी उतना ही प्यार करता है
जो रहता है उसके हाथों में, हिले-डुले बगैर।

अनुवाद : डॉ. पुनीत बिसारिया

(शोभराव चहाण द्वारा लिखित ‘सहृदय न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर धर्माधिकारी की न्याय-यात्रा’ से)

पांचवीं अनुसूची के क्षेत्रों में नगरीय निकायों के लिए स्वशासन का कानून बनाने, भूरिया समिति की सिफारिश पर अमल नहीं करके सरकार जनजातीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों की लूट का दरवाजा खुला रखना चाहती है। सरकार द्वारा संविधान के प्रावधानों की अवहेलना से ही जनजातीय समाज में रोष

पनप रहा है। इस संबंध में राष्ट्रपति और गृहमंत्री ने भी अपने सम्बोधनों में राज्य सरकारों को आगाह किया है। अनेक सरकारी रिपोर्ट भी स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि लूट को विकास बताने वाली राज्य सरकारें प्राकृतिक संसाधन कापेरिट घरानों को बेच देने पर आमादा हैं।

गतिविधियां एवं समाचार राष्ट्रपिता का पावन स्मरण :

30 जनवरी, 2014 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का 66वां शहीद दिवस प्रस्थान आश्रम, खानपुर, पठानकोट में श्रद्धा और भक्तिपूर्वक मनाया गया। देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने वाले असंख्य शहीदों का पावन स्मरण कर उन्हें अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये गये। प्रार्थना सभा के कार्यक्रम का शुभारम्भ आर्य महिला कॉलेज, पठानकोट द्वारा गांधीजी के प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीड़ पराई जाने रे' से हुआ। कार्यक्रम में गणमान्य नागरिकों, रचनात्मक कार्यकर्ताओं, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों ने भाग लिया।

'सत्य-अहिंसा के प्रतीक गांधी', विषय पर उच्च कोटि की भाषण प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। स्कूल-कॉलेज की कुल 18 टीमों ने प्रतियोगिता में भाग लिया। प्रतियोगिताओं की विषय प्रस्तुति और गहराई से किये गये अध्ययन को देख सभी रोमांचित हो गये। सभी प्रतियोगियों को गांधी साहित्य प्रदान किया गया।

—यशपाल गुप्ता

जीवन जीने का तरीका है गांधी :

“गांधी जीवन जीने का तरीका है”, यह विचार गांधी पुण्य-तिथि पर गांधी भवन, गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र, जोधपुर में आयोजित कार्यक्रम के अवसर पर डॉ. कल्पना पुरोहित, विभागाध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय ने व्यक्त किया। आपने कहा कि गांधी को हम अपने आचरण में उतारें, जिससे हमारी संतानें जानें कि गांधी हुए थे। युवा पीढ़ी में गांधी की सोच को जिन्दा रखने के लिए निरंतर प्रयासरत रहना होगा। आज गांधी के जीवन मूल्यों की जरूरत हमें ही नहीं बल्कि पूरे विश्व को है।

राजस्थान प्रदेश सर्वोदय मंडल की अध्यक्ष एवं गांधी शांति प्रतिष्ठान की उपाध्यक्ष

सर्वोदय जगत

आशा बोथरा ने सर्वधर्म प्रार्थना की, और कहा कि हमारा यह मौलिक दायित्व है कि हम बच्चों के बीच गांधी को पहुँचाएं। “किसी के काम जो आये उसे इनसान कहते हैं” गीत भी सुनाया।

आई.आई.टी. के प्रोफेसर डॉ. विवेक विजय ने कहा कि गांधी की कथनी व करनी में अभिन्नता थी, भारत को शिखर पर पहुँचाना है तो गांधी-विचारों का अनुसरण करना होगा।

नेहरू युवा केन्द्र के जिला समन्वयक श्यामसुन्दर जोशी ने कहा कि गांधी ने मानवता के लिए जो कार्य किया है, उसे देखकर पूरा विश्व गांधी-मार्ग पर चलने को लालायित है। आज के दिन को गांधी आचरण व संकल्प दिवस के रूप में अपनाना चाहिए। हरप्रसाद राय ने कहा कि गांधी के दर्शन को आगे बढ़ाने के लिए समाज में जागरूकता को बढ़ायें। संगीतज्ञ मोतीलाल बोहरा ने 'वैष्णव जन तो तेने कहिये...पीर पराई जाने रे', हेना भट्टाचार्या ने भजन, डॉ. सुशीला भंडारी ने 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, सबके जीवन का दर्शन हो' भजन प्रस्तुत किये।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. भावेन्द्र शरद जैन ने किया।

—डॉ. भावेन्द्र शरद जैन

शहीदों को श्रद्धांजलि :

30 जनवरी को महात्मा गांधी प्रतिमा पार्क चौकी चौराहे पर जिला सर्वोदय मंडल, बरेली द्वारा शहीदों की स्मृति में सर्वोदय मेले का आयोजन किया गया। 11 बजे जिला सर्वोदय मंडल के पूर्व अध्यक्ष श्री गांधी मोहन ने गांधी प्रतिमा पर चर्खे से कते सूत की माला पहनायी तथा उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के पूर्व अध्यक्ष डॉ. महावीर सिंह ने शहीदों की स्मृति में भारतीय स्वतंत्रता और उसके पश्चात देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बलिदान देने वाले शहीदों को दो मिनट का मौन रखकर श्रद्धांजलि अर्पित की। श्रद्धांजलि सभा में बापू के प्रिय भजनों का गायन किया गया।

श्रद्धांजलि सभा में 'विकल्प' संस्था के अध्यक्ष राजनारायण गुप्त, पूर्णिमा गुप्ता, जिला सर्वोदय मंडल के पूर्व अध्यक्ष गांधी मोहन, ओमप्रकाश भाई, डॉ. सुचित्रा डे, पूर्व जिला प्रतिनिधि जगदीश निमिष, क्रांतिकारी छात्र परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष रजत कुमार, प्रमुख कवि एवं साहित्यकार श्री ज्ञानस्वरूप कुर्मद आदि ने महात्मा गांधी एवं शहीदों को श्रद्धांजलि समर्पित की। चर्खा कातने वाली बालिकाओं को भेंट कर सम्मानित किया गया। संचालन मंत्री भगवान सिंह दीक्षित ने किया।

—ओमप्रकाश

नशामुक्ति मौन जुलूस :

पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कण्वाश्रम ग्राम स्वराज्य समिति, सर्वोदय मंडल, नशाबंदी समिति, 'डू समथिंग सोसाइटी'; महर्षि कण्व विद्यामंदिर; आर्य समाज आदि समाज सेवी संस्थाओं द्वारा संयुक्त रूप से महात्मा गांधी की 66वीं पुण्य-तिथि पर, स्वतंत्रता प्राप्ति पर गांधीजी द्वारा निर्देशित सर्वप्रथम कार्य शराबबंदी के बारे में जनजागरूकता के साथ ही जनप्रिय सरकार द्वारा आवश्यक कार्यवाही हेतु 'नशामुक्ति' जुलूस गढ़वाल के प्रमुख नगर कोटद्वार पंचायती धर्मशाला से सुबह 10.30 बजे प्रारम्भ होकर बाजार नगरपालिका परिषद् होकर तहसील प्रांगण में पहुंचा। 'शांति साइरन' के साथ ही सर्वधर्म प्रार्थना, वैष्णवजन और रामधुन के बाद 'देवभूमि उत्तराखंड को नशामुक्त करने, जनप्रिय सरकार से पहल कर राष्ट्रपिता को सही श्रद्धांजलि अर्पण करने, उपजिलाधिकारी, कोटद्वार द्वारा मुख्यमंत्री महोदय के लिए ज्ञापन प्रेषित किया गया।

उपरोक्त समाज सेवी संस्थाओं में नशाखोरी से नष्ट हो रहे भविष्य की रक्षा के लिए नई पीढ़ी में संस्कार निर्माण हेतु विद्यालयों में नशामुक्ति जागरूकता कार्यक्रम सतत जारी रखने का निर्णय लिया गया।

—मानसिंह रावत

विचार-सौरभ

गांधीजी की आर्थिक क्रांति की अवधारणा

□ धीरेन्द्र मजूमदार

वस्तुतः पूंजीपतियों के खतम होते ही पूंजीवाद का नाश नहीं होता। पूंजीवाद तो एक पद्धति है और वह पद्धति मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति से संबंधित है। अगर मनुष्य-जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति पूंजी की आधारभूत है तो वह पूंजीवाद है। अर्थात् मनुष्य के जिन्दा रहने के लिए पूंजी की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है तो समझना होगा कि मानव समाज की आर्थिक पद्धति पूंजीवादी है। रूस में जो लड़ाई हुई, उसमें लोगों ने इस पूंजी की अनिवार्यता पर आघात नहीं किया, बल्कि जिस तरह फ्रांस की लड़ाई के बाद केन्द्रीय राज्य-सत्ता को अधिक संगठित किया उसी तरह इस बार जीवन-धारण के लिए पूंजी की अनिवार्यता को और भी बढ़ा दिया। गांधीजी की आर्थिक-क्रांति की कल्पना मनुष्य को पूंजी की इस गुलामी से छुट्टी देने की रही, न कि जनता को पूंजीपति के हाथ से छुड़ाकर किसी व्यक्ति या दल को सौंपने की। वे मनुष्य की जिन्दगी को पूंजी के आधार से निकाल कर श्रम के आधार पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे। अर्थात् वे पूंजीवाद को समाप्त कर श्रमवाद को स्थापित करना चाहते थे। यही कारण है कि वे जिन्दगी की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हल, बैल, चरखा-करघा आदि साधनों पर केन्द्रित करने की सलाह देते रहे और मिल आदि बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों को खतम करने को कहते रहे।

सोने की माया और नयी गुलामी : दुर्भाग्य से देश के लोगों के दिमाग में तो गांधीजी के लिए भरपूर स्थान है, लेकिन दिमाग को अभी तक अंग्रेजों ने दखल कर

रखा है। हृदय में गांधी का स्थान होने के कारण हम जयंती, स्वर्गारोहण तिथियां आदि मनाते हैं, लेकिन जहां दिमाग से सोचने की बात होती है वहां हम मिल आदि बढ़ाने पर ही आते हैं। रचनात्मक कार्यकर्ताओं को इस दिमागी जड़ता से सावधान रहना होगा। उनको अपना दिमाग क्रांतिकारी बनाना होगा ही, नहीं तो दूसरे ऋषियों की तरह गांधी का जन्म भी निष्फल जाएगा। क्रांति की बात छोड़ दें, पर यदि हम आर्थिक क्षेत्र में पूंजी का भरोसा छोड़कर श्रम का भरोसा नहीं लेंगे तो हम मामूली राजनैतिक युद्ध में भी हार जायेंगे। मुझे डर है कि अंग्रेजों के चले जाने की खुशी में हमारे नौजवानों की राजनैतिक परिस्थिति की धारणा धूमिल न हो जाय। राजनीति हमेशा एक-सी नहीं होती। डेढ़ सौ वर्ष पहले संसार में राजनैतिक कशमकश एक मुल्क द्वारा दूसरे मुल्क को दखल करने की थी। इस प्रकार जब अंग्रेजों ने भारत को दखल कर लिया तो भारत उनका गुलाम बन गया। लेकिन आज परिस्थिति बदल गयी है। आज संसार की राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता मुल्कों को दखल करने की नहीं, बल्कि उनपर प्रभाव विस्तार करने की है। अतः अगर आज भी राजनैतिक भूमिका में भारत किसी-न-किसी के असर के नीचे आ जाय तो मानना होगा कि वह अमुक मुल्क का गुलाम बन गया। स्पष्ट है कि मुल्क की आबादी की जीवन-रक्षा के लिए अगर पूंजी का भरोसा किया गया तो जिसके पास पूंजी यानी सोना है, भारत को इसी के असर में आना पड़ेगा। और आज किसके पास सोना है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। अतः रचनात्मक

कार्यकर्ता अगर क्रांति की गहराई की बात न भी सोच सकें, तब भी उन्हें यह बात तो सोचनी ही पड़ेगी कि अगर हमने सोने का भरोसा किया तो इंग्लैंड के स्थान पर अमेरिका का गुलाम बन जाना पड़ेगा।

दो-रुखा वैषम्य : पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था तथा केन्द्रीय शासन व्यवस्था के विकास के साथ-साथ एक समस्या दुनिया में दिन-पर-दिन भीषण रूप पकड़ रही है। वह है वर्ग-विषमता की समस्या। पूंजीवाद और राज्यवाद के अगर शासन और शोषण का सर्वांगीण कब्जा केन्द्र के हाथ में रखना है तो उन्हें ऐसे असंख्य एजेंटों की आवश्यकता है, जिनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व न रहे और जो उनके शोषण का हिस्सेदार बनकर उनके ही वर्ग-शामिल रह सकें। किताबी शिक्षा-पद्धति ने भी इस वर्ग के विकास में काफी सहायता दी। नतीजा यह हुआ कि आज रईस और बाबू नामधारी शोषकों का बोझ इतना ज्यादा भारी हो गया कि नीचे का उत्पादक वर्ग दबकर मरना चाहता है और साथ ही उत्पादक के कंधे पर बैठे हुए शोषक वर्ग के संख्याधिक्य के कारण उन्हें शोषण के लिए पर्याप्त रस न मिलने से यह वर्ग भी सूखकर मर रहा है। फलतः आज दुनिया में हुजूर और मजूर के रूप में भयंकर वर्ग-विषमता की समस्या खड़ी हो गयी है। हमारे मुल्क में तो यह वैषम्य दो-रुखा हो गया है—पहला, आर्थिक क्षेत्र और दूसरा, छूत-अछूत के रूप में सामाजिक क्षेत्र में। ये दोनों ही समस्याएं आपको एक साथ हल करनी हैं, नहीं तो यह मुल्क डूब कर ही रहेगा। **प्रस्तुति : बद्रीनाथ सहाय**

(‘सर्वोदय’, फरवरी 1950 के अंक से)